PK
2098
B55B37

पर्दे के पीछे

Parde ke piche

पर्दे के पीछे

आठ एकांकी

Bhatt, Udai Shankar

उदयशंकर भट्ट

नई दिल्ली

म सि जी वी प्र का श न

एकाधिकारी वितरक
राजकमल प्रकाशन
१, फैज़ बाज़ार, दिल्ली

PK
2098
B55 P37

मूल्य दो रुपये आठ आने

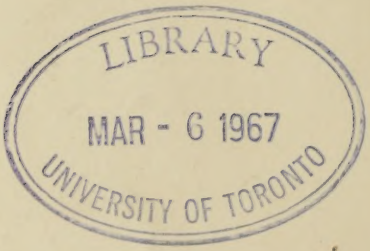

प्रकाशक
मसिजीवी प्रकाशन
नई दिल्ली

मुद्रक—गोपीनाथ सेठ, नवीन प्रेस, दिल्ली ।

कविवर श्री सुमित्रानन्दन पन्त को

श्री उदयशंकर भट्ट हिन्दी के प्रतिष्ठित कलाकार हैं। उनकी प्रतिभा बहुमुखी है। उन्होंने हमारे साहित्य के प्रायः सभी अंगों की श्रीवृद्धि की है। वे मधुर गीतकार, सुन्दर प्रबन्ध-कवि, सफल उपन्यास-कहानी-लेखक तथा प्रसिद्ध नाटककार हैं। अकेले नाटक के ही क्षेत्र में उन्होंने विषयवस्तु, उद्देश्य तथा शिल्पविधान की दृष्टि से भिन्न रूप-भेदों को ग्रहण किया है। पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक नाटक लिखे हैं, समस्या-नाटक तथा नीतिपरक नाटक लिखे हैं और उधर गीतिनाट्य, एकांकी नाट्य-रूपक, रेडियो-रूपक आदि की भी रचना की है। इस प्रकार भट्ट जी की कला-काव्य की समृद्धि, कथा की रोचकता तथा नाटक की सजीवता से सम्पन्न है और अकेले परिमाण की दृष्टि से ही हिन्दी-साहित्य को उनका गुरुतर आभार स्वीकार करना पड़ेगा।

भट्टजी के व्यक्तित्व में परम्परा की गरिमा और प्रयोग की स्फूर्ति है और वे प्राचीन संस्कारों का आदर्श लिये नवीन यथार्थ के प्रति चिरजागरूक रहे हैं। आज के कलाकार का सबसे बड़ा सम्बल यही है—परम्परा से उच्छिन्न वह वायु का बगूला बन जाता है और वर्तमान से तटस्थ रहकर गतिहीन भूमिखण्ड। यही सम्बल लेकर श्री उदयशंकर भट्ट अपने मार्ग पर स्वस्थ-चरण आगे बढ़ते रहे हैं। उनमें मानव के प्रति सहज निष्ठा, जीवन के प्रति सच्चा अनुराग है और इस निष्ठा तथा अनुराग को मूर्त रूप देने की लगन है जो साहित्य के रूपक में व्यक्त है।

'पर्दे के पीछे' उनके नवीन एकांकियों का संकलन है। इसमें आठ एकांकी हैं। 'मायोपिया' और 'बार्गेन' आज के नवयुवकों और नव-युवतियों के पारस्परिक सम्बन्ध की समस्या पर आधृत हैं। आधुनिक

युवती की आत्म-निर्भरता की भावना और उससे उत्पन्न युवक के प्रति उदासीन भाव या क्षोभ अपने-आप में एक बड़ी प्रवंचना है। यह नारी का सहज स्वभाव नहीं है, उसकी विकृति है जो अनेक प्रकार की मिथ्या धारणाओं और कुण्ठाओं की ग्रन्थि-मात्र है। पुरुष के प्रति यह अस्वाभाविक आत्म-प्रवंचनमय द्वेष-भाव इस युग की शिक्षिता नारी का बढ़ता हुआ मानसिक रोग है जिसका उपचार समाज के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। बार्गेन में इसका एक भिन्न रूप मिलता है—इसमें दूसरे प्रकार की अस्वाभाविकता है जो स्वच्छन्दता पर आश्रित है। नारी के लिए जितना अस्वाभाविक पुरुष-द्वेष है, उतना ही अस्वाभाविक स्वच्छन्द विहार भी। दोनों ही अप्राकृतिक स्थितियाँ हैं जिनमें भटककर आज की नारी जीवन का स्वास्थ्य खो बैठती है। भट्टजी ने एक अनुभवी पुरुष की दृष्टि से इस वैषम्य को देखा है और उसके समाधान की ओर इंगित किया है। 'यह स्वतन्त्रता का युग' का विषय भी इसी से मिलता-जुलता है। स्वतन्त्रता की भ्रान्त धारणा किस प्रकार उच्छृङ्खलता का रूप धारण करके गृहस्थ के लिए घातक सिद्ध होती है, यही इसका प्रतिपाद्य है। 'पर्दे के पीछे' और 'बाबूजी' भी सामाजिक व्यंग्य हैं, परन्तु उनका क्षेत्र थोड़ा व्यापक है। उनकी मूल समस्या काम पर केन्द्रित नहीं है। एक में यह दिखाया गया है कि हमारे आज के जीवन में पर्दे के पीछे क्या व्यापार चलता है; हमारे आदर्शवाद और त्याग-तपस्या के पीछे कितनी प्रवंचना है; हमारी सामाजिक प्रतिष्ठा की नींव कितनी पोली है। 'बाबूजी' के व्यंग्य का लक्ष्य है आज का पारिवारिक जीवन। यह व्यंग्य अपनी निर्ममता में करुण हो गया है। 'नई बात' में वर्तमान सामाजिक मूल्यों पर प्रहार है। भौतिक मूल्यों ने आज के समाज की चेतना को इतना आच्छादित कर रखा है कि जीवन के सांस्कृतिक-बौद्धिक मूल्य सर्वथा तिरस्कृत हो गए हैं। स्थूल ऐहिक समृद्धि ने आज के सफल स्त्री-पुरुषों की बुद्धि को भी स्थूल कर दिया है—प्रस्तुत एकांकी में इसी नई बात का उद्घाटन किया

गया है। 'अपनी-अपनी खाट पर' इन सबसे भिन्न है। वह व्यंग्य न होकर निर्मल हास्य का उदाहरण है, साथ ही उसमें नशे की मानसिक स्थिति का भी बड़ा मनोरंजक चित्रण हुआ है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि प्रस्तुत संग्रह के अधिकांश नाटक व्यंग्य-प्रधान हैं। पिछले वर्षों में, ज्यों-ज्यों भट्टजी की कला प्रौढ़ होती गई है, त्यों-त्यों उसमें व्यंजना का विकास होता गया है। चिन्तन तथा अनुभव से परिपुष्ट भट्टजी की जीवन-दृष्टि अब प्राचीन और नवीन, प्रवृत्ति और निवृत्ति, अनुशासन और स्वच्छन्दता में सहज ही संतुलन कर लेती है और इस युग की समस्याओं के मर्म तक पहुँचकर व्यंग्य के द्वारा उनके समाधान की ओर संकेत कर सकती है। उनका व्यंग्य केवल काट करके नहीं रह जाता है; उसमें जोड़ने की भी क्षमता है। दूसरे शब्दों में वह केवल निषेधात्मक ही नहीं है रचनात्मक भी है। उसमें केवल भर्त्सना-मात्र नहीं है, सहानुभूति भी है।

भट्ट जी जैसे ख्यातिलब्ध साहित्यकार के ग्रन्थ के लिए भूमिका का उपचार अनावश्यक है। 'न हि कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते'। वास्तव में अपने ग्रन्थ की भूमिका लिखने का आदेश उन्होंने मुझे ही गौरव प्रदान करने के लिए दिया है।

हिन्दी-विभाग, —नगेन्द्र
दिल्ली विश्व विद्यालय, दिल्ली

सूची

१. नई बात - - - - - - १

२. बाबूजी - - - - - - २५

३. यह स्वतन्त्रता का युग ! - - - ४८

४. मायोपिया - - - - - ६६

५. अपनी-अपनी खाट पर - - - - ९०

६. बार्गेन - - - - - - १०२

७. ग्रहदशा - - - - - - १३१

८. पर्दे के पीछे - - - - - १५२

इन नाटकों को किसी संकलन में लेने तथा खेलने से पूर्व
लेखक की आज्ञा लेना अत्यन्त आवश्यक है।

नई बात

: पात्र :

किशोरीलाल	...	एक सरकारी अफसर
रघुवंश	...	कविता-प्रेमी तथा सरकारी अफसर
विश्वभूषण	...	कवि
सुनन्दा	...	किशोरीलाल की पत्नी
कुन्तल	...	विश्वभूषण की पत्नी
चोपड़ा	...	स्वतन्त्रता-प्रिय रमणी

[अंग्रेजी ढंग से सजा हुआ कमरा। जिसमें कालीन, सोफा-सेट, छोटी मेज; गुलदस्ता पीतल के गमले में; कुछ चित्र जो पाश्चात्य देशों के हैं। कानिस्त पर ताँबे की नग्न मूर्तियाँ। कमरा बहुत बड़ा नहीं है; उसे छोटा भी नहीं कहा जा सकता। कुर्सियों काउचों को मिलाकर पन्द्रह आदमियों के लिए आसानी से बैठने की जगह। कमरे से सटा हुआ एक और कमरा है जो किशोरीलाल की पत्नी का ड्राइंग रूम है। कमरे में एक युवती बैठी है—बाईस वर्ष की उम्र, चेहरा सुन्दर, पर मुरझाया हुआ। सौन्दर्य-प्रिय, दिखावा पसन्द करने वाली किंतु चंचल; इस समय उदास, पुरानी साड़ी, पैर में चप्पल, नाम कुन्तल। हाथ में रुमाल दबाये रह-रहकर पंखे के नीचे बैठी हुई मुँह पोंछती है और पास पड़े 'सरिता' और 'रानी' के चित्र देखने लगती है। पढ़ने का यत्न करने पर भी पढ़ कुछ नहीं पाती। चेहरे पर उद्विग्नता; जैसे किसी की प्रतीक्षा कर रही है। सटे हुए कमरे में मिसेज़ किशोरीलाल ड्रेसिंग टेबल के पास खड़ी शृंगार कर रही हैं। पास ही रेडियो बज रहा है जिसमें फिल्मी गाने आ रहे हैं। मिसेज़ उन्हीं गानों को दुहराती

हुई शृंगार कर रही हैं। वह आवाज़ कमरे में हल्की होकर बैठक में आ रही है। कभी-कभी कुन्तल उन गानों को सुनने लगती है, कभी उठकर चित्र देखने लगती है। फिर घूमकर काउच पर बैठ जाती है। 'सरिता' उठा लेती है। उसी समय रेडियो चलता छोड़कर मिसेज़ किशोरीलाल (सुनन्दा) बनी-ठनी कमरे में आती है। सुनन्दा की अवस्था करीब अट्ठाईस साल, गेहुँआ रंग, आकर्षक रूप, जार्जेट की साड़ी पहने वैसे ही रंग की बाडिस, माथे पर बिन्दी, कानों में डायमंड-क्रॉस-इयररिंग, सिर से ब्रिलियण्टाइन हेअर क्रीम की खुशबू, ओटो स्नो, मुँह पर पाउडर, नाखून लाल, अंगुलियों में दो-दो अँगूठियाँ, लाल रंग की चप्पल पहने आती हैं। मुँह गोल। ओंठ पुते हुए। शरीर की गठन सुन्दर। चेहरे पर बड़े होने का अभिमान। समय साढ़े बारह बजे दोपहर, शनिवार का दिन। उसी कमरे में टेलीफोन रखा है। कुन्तल मिसेज़ को 'जीजी' कहकर पुकारती है।

सुनन्दा—(सामने काउच पर बैठकर कुन्तल से न बोलकर नौकर को पुकारती है) अरे दीनू, ओ दीनू, एक गिलास पानी तो ला, गला सूखा जा रहा है। (दीनू पानी लाता है और वह बिना कुन्तल से पूछे पानी पी लेती है। पीछे कुन्तल की ओर देखती है) पानी पिओगी कुन्तल ?

कुन्तल—नहीं, मुझे प्यास नहीं है।

सुनन्दा—(पानी पीकर मुँह रूमाल से पोंछते हुए) हाँ कहो क्या बात है ? कैसे हैं तुम्हारे वे कवि जी ? तुमने कुन्तल, न जाने क्या सोच-कर···किसी पढ़े-लिखे से शादी करतीं तो कितना अच्छा होता !

कुन्तल—अब क्या हो सकता है जीजी, मेरा तो भाग फूट गया। न जाने किस घड़ी में मैंने इनसे शादी करने का निश्चय किया।

सुनन्दा—आज कोई खास बात हुई क्या ?

कुन्तल—(उतरे हुए मन से) खास बात क्या है, वह तो रोज की ही बात है। सुबह होते ही दो-चार दोस्त आ बैठते हैं, वे बारह बजे तक पिंड

नहीं छोड़ते। चाय, शरबत, नाश्ता और कभी-कभी खाना भी, और जोर-जोर से कविता-पाठ होता है। सब अपनी-अपनी कविताएँ सुनाते हैं। हा-हा हू-हू, सिगरेट का धुआँ और प्रतिक्षण पान और पानी का आर्डर! मैं तो तंग आ गई। खर्च इतना, आमदनी कुछ भी नहीं। कभी हुआ तो दस-बीस रुपये का मनीआर्डर आ गया, नहीं तो फाका। एक भी गहना नहीं रहा है। कहते हैं निहाल कर दूँगा। न जाने कब वह निहाल कर देने का दिन आयगा। आज तो फाके हो रहे हैं।

सुनन्दा—हूँ, तो यह बात है! आवारागर्द-सा आदमी है।

कुन्तल—यह तो मैं नहीं कह सकती। चाहते भी वे मुझे कम नहीं हैं। हृदय बड़ा उदार है। चाहे जो माँग लूँ, कभी इनकार नहीं करते। पर·····

सुनन्दा—सुनो कुन्तल, मैं इसमें तुम्हारी ही गलती मानती हूँ। तुम क्यों नहीं उसे अपने काबू में रखतीं?

कुन्तल—वे तो बहुत बड़े कवि हैं।

सुनन्दा—(तुनककर) क्या हुआ कवि हैं तो! यह कोई काम नहीं है। इससे पेट नहीं भरता। कवि कोई बड़े आदमी थोड़े होते हैं। मामूली-सा कुछ गाना सीख लिया और कवि बन गए। न जाने क्या गाते हैं वे लोग! आखिर वह आदमी क्यों अपना वक्त ख़राब करता है? कोई काम क्यों नहीं करता?

कुन्तल—वे कहते हैं कवि संसार में सबसे बड़ा होता है; वह समाज का नेता है; उसके हाथ जनता का जीवन है; उसके एक इशारे पर संसार में उथल-पुथल मचती है; वह मनुष्य के भविष्य का द्रष्टा है।

सुनन्दा—हूँ·····कितना बड़ा वहम है उस आदमी को अपने सम्बन्ध में! कहीं वह पागल तो नहीं है? मुझे तो ऐसा ही लगता है।

कुन्तल—यह निश्चय है कि उनकी कविता सुनकर लोग झूम उठते हैं। समाचार पत्रों में उनकी तारीफ, उनके चित्र छपते हैं। लेकिन मुझे···

सुनन्दा—तब तो और भी बुरा। जैसे फ़िल्म की औरतों की तसवीरें

छपती हैं। कुन्तल, सच बात तो यह है कि उसका दिमाग खराब है, नहीं तो मैं ही साहब से कहकर कहीं नौकरी दिलवा देती। और कुछ नहीं तो वह पचपन रुपये का क्लर्क हो ही जाता, महँगाई का भत्ता अलग। मैट्रिक तो पास है न?

कुन्तल—मैं तो कहती हूँ, चलो बाबूजी से कहकर नौकरी दिलाए देती हूँ; वे बड़े अफसर हैं। **(टेलीफोन की घण्टी बजती है। मिसेज़ टेलीफोन लेती है।)**

सुनन्दा—हलो हलो! दिस इज़ फ़ोर डबल ओ नाइन। यस प्लीज़, साहब हैज़ नॉट अराईव्ड यट्! नहीं, वे घर पर नहीं मिलते। यस् यस्, ही इज़ सो बिज़ी। प्लीज रिंग अप इन दि आफिस। **(कुन्तल से)** तो फिर वह क्या बोला?

कुन्तल—"मैं नौकरी नहीं करूँगा। मैं किसी के नीचे काम नहीं कर सकता। मैं कवि हूँ।"

सुनन्दा—**(क्रोध से)** नीचे काम नहीं कर सकता! 'ही इज़ सच ए फूल।' हमारे साहब के नीचे कम-से-कम पाँच सौ आदमी काम करते हैं। क्या वे गधे हैं? तलुए चाटते हैं, तलुए। प्रार्थना मिन्नत करते हैं कि एक बार साहब से मिल सकें और उसे इतना गरूर? मेरे तो जी में आता है, हण्टर लेकर दो लगाऊँ और पूछूँ नौकरी करेगा कि नहीं। भला बिना नौकरी के कहीं गुज़ारा हुआ है? नौकरी नहीं करनी हो तो दूकान कर, खोमचा बेच, बोझा ढो। अरे कुछ तो कर। शादी की है, दूसरे की लड़की लाया है। तुझे खाने को नहीं चाहिए तो उसे तो चाहिए। दीनू, ओ दीनू! **(दीनू का प्रवेश)** देख एक गिलास शरबत और बना ला। तुम भी पिओगी कुन्तल, दो गिलास, जरा पंखा तेज़ कर दे। और देख ये मेरी चप्पलें ले जा, दूसरी नीले रंग की ले आ। **(वह वैसे ही करता है)** अरे गधे, पहले नीली चप्पल ला, फिर इसे ले जाना। क्या मैं इस तरह नंगे पैर रहूँगी? तुम लोगों को कभी तमीज़ आएगी। **(इसी समय पर्स में से शीशा और पफ निकालकर मुँह ठीक करती**

है।) देखो कुन्तल, यह अठारह की चप्पल अभी बम्बई से आई है। चार साड़ियाँ नौ सौ की, कुछ कपड़े और दो चप्पलें। क्या करूँ वह मानते ही नहीं हैं! हर महीने—दो सौ-तीन सौ के कपड़े ले आते हैं मेरे लिए। सौ रुपये की तो दवाइयाँ आ जाती हैं। अब ऑपरेशन के लिए कह रहे हैं। क्या करूँ? ऑपरेशन करा लूँ? आखिर इस इतने को भोगने वाला भी तो कोई हो! कहते हैं तभी बच्चा होगा। तो क्या तुम्हारे सब गहने बिक गए? हॉरिबल!

(मिसेज़ चप्पल पहनकर टहलने लगती है। कुन्तल उसके घूमने के साथ-साथ मुँह मोड़कर बातें करती है।)

कुन्तल—बिके तो नहीं, गिरवी रखे हैं।

सुनन्दा—(टहलती हुई ठहरकर) तो बिके ही समझो। अब क्या आएँगे। कुन्तल, मुझे वह दिन याद है जब तुमने इससे शादी करने की ज़िद ठानी थी। न जाने क्या देखकर रीझ उठी थीं। माँ-बाप से भी सलाह न ली। अब कोई चिट्ठी-पत्री आती है?

कुन्तल—(**आँखें पोंछकर**) नहीं, कोई नहीं। माँ कभी-कभी हाल-चाल पुछवा लेती हैं। मेरे लिए तो उस घर का द्वार बन्द-सा है।

सुनन्दा—पिछले दिनों जब मैं कानपुर गई थी तो पिताजी तुम्हारा हाल पूछ बैठे थे। तुम्हारी माँ एक दिन मिली थीं। लेकिन उन दिनों तो मुझे तुम्हारा पता भी नहीं मालूम था। मैंने कह दिया, देखा नहीं, मुझे नहीं मालूम। और क्या कहती?

कुन्तल—आज मैं तुम्हीं से सलाह लेने आई हूँ। ऐसे कितने दिन चलेगा जीजी! मैं क्या जानती थी कि कवि ऐसे आदमियों को कहते हैं, जिनका न खाने का ठिकाना, न पीने का, न रहने का ठौर, न और कोई। कभी-कभी तो रात भी बाहर काट देते हैं। लिखेंगे तो रात-रात-भर लिखते ही रहेंगे। कभी-कभी तो खाना भी भूल जाते हैं जैसे याद ही न रहा हो। न कपड़ों का ध्यान है, किसी दिन कुरता फट गया तो फटा ही पहने रहेंगे। नई चप्पल तो अक्सर खो आते हैं और नंगे पैर ही लौटते हैं। मैं पूछती

हूँ, चप्पल कहाँ है तो ध्यान आता है, जैसे सोकर उठे हों। फिर भोले मुँह से कहते हैं—शायद कोई ले गया होगा। मैं उनकी इसी बात पर गद्गद हो उठती हूँ। गुस्सा भी आता है! पर इससे पेट तो नहीं भरता जीजी!

सुनन्दा—ये तो एकदम गँवार और पागलों के काम हैं। भला ऐसा भी क्या? मैं पूछती हूँ, तुम क्या देखकर लोट-पोट हुई उस पर? ऐसे आदमियों को या तो साधु होना चाहिए या अहमक! **(काउच पर बैठ जाती है।)**

कुन्तल—क्या बताऊँ! मुझे वह दिन याद है जीजी, जब वे एक दिन हमारे कालेज में कविता पढ़ने आये थे और हमारी सारी क्लास की लड़कियाँ उनकी कविता सुनकर लट्टू हो गई थीं। समझी तो मैं कुछ नहीं कि क्या कहते हैं, फिर भी गले में इतना लोच था, स्वर इतना मीठा था कि इसके बाद हमने उनके हस्ताक्षर लिये। उस दिन के बाद से न जाने मुझ पर क्या पागलपन सवार हो गया कि इतना आगे बढ़ आई।

सुनन्दा—प्रेम का विवाह है तो सहो। तुम्हें मालूम है कि मैंने कैसा लड़का चाहा था—बड़ा अफसर, रुपये वाला। मैं तो साइंस पढ़ती रही हूँ। वैसे भी मुझे तुम्हारी हिन्दी-विन्दी से कभी शौक नहीं रहा। **(टेलीफोन की घण्टी बजती है)** हलो, हाँ, आओ न। मैं चाय तैयार कराती हूँ डियर। आप आओ। साहब से मैं पूछती हूँ कि वे कब आ रहे हैं। हाँ, हाँ, **(हँसकर)** खूब! देखो मैं नाराज हो जाऊँगी। अरे तुम आओ तो। हुश, ऐसी बातें टेलीफोन पर नहीं की जातीं। आओ। क्या कहा, ज़रा देर? अच्छा! **(रख देती है।)**

(कुन्तल से) यह मिसेज़ चोपड़ा भी खूब हैं। न कोई काम है न धन्धा। पति दफ्तर गये और बन-ठनकर निकली। सबके घर जायगी। सब प्रकार की बातें इससे सुन लो। सिनेमा जाना रोज का काम है। जो भी मिल जाय उसी के साथ चल देगी। रेस में, सिनेमा में, क्लब में, डांस में, कंसर्ट में कहीं भी इसे देख लो।

कुन्तल—पति कुछ भी नहीं कहते?

सुनन्दा—पति को वह समझती ही क्या है ? पूरी पहलवान है। पिछले दिनों वकाई का काम भी कर चुकी है।

कुन्तल—वकाई क्या ?

सुनन्दा—जो औरतें फौज के लोगों को प्रसन्न करने, उनका मनोरंजन करने के लिए रखी जाती हैं उन्हें वकाई कहते हैं।

कुन्तल—बड़ी विचित्र है।

सुनन्दा—हिन्दी और टूटी-फूटी अंग्रेजी खूब बोल लेती है।

कुन्तल—फिर चरित्र तो क्या ठीक रहा होगा !

सुनन्दा—वह चरित्र-जैसी चीज में विश्वास नहीं रखती। जीवन की सजीवता में विश्वास करती है। तुम्हारा क्या विचार है ?

कुन्तल—इतनी दूर तक तो मैंने कभी सोचा ही नहीं।

सुनन्दा—शायद स्त्री की सब से बड़ी कमजोरी ही उसे बहुत सी परेशानियों से बचाती है। पर इसने तो यह बन्धन तोड़ दिया है।

कुन्तल—मुझसे तो ऐसे कभी न घूमा जाय।

सुनन्दा—स्त्री को उच्छृंखल होने से बचाने वाली उसकी लाज है। जब वह हट जाती है तो उसकी निर्लज्जता से मनुष्य सिहर उठता है। स्त्री की अदम्य शक्ति को रोकने वाली उसकी लज्जा ही है, जिसके कारण सड़क पर उसके पैर रुक-रुककर पड़ते हैं, पर वह सब एक वहम है। खैर, लो साहब भी आ गए और उनके साथ यह कौन है ?

(एक और व्यक्ति के साथ किशोरीलाल का प्रवेश)

हलो डियर आज तो—ओह···मिस्टर रघुवंश, आइए ! (बैठाती है।)

किशोरी—लो सुनन्दा, श्री रघुवंश तुमसे ही मिलने आये हैं। यह तो तुम्हारे क्लास-फेलो भी रहे हैं ?

सुनन्दा—हाँ हाँ, मैं इन्हें अच्छी तरह जानती हूँ। हम लोग तो दो साल तक एक ही क्लास में पढ़े हैं।

रघुवंश—मैं समझता था सुनन्दा कि तुम किशोरीलाल के साथ शादी करने के बाद मुझे भूल गई होगी।

किशोरी—और तुम कौन छोटे आदमी हो ! यह एम्बैसी में प्रचार-विभाग के मन्त्री होकर जा रहे हैं सुनन्दा !

सुनन्दा—(आश्चर्य से) कब ? तब तो बड़ी खुशी की बात है। शादी तो हो गई न ?

रघुवंश—बस इस मास के आखिर में। सब प्रबन्ध हो गया है। तुमसे मिलने की बड़ी इच्छा थी सुनन्दा देवी। आज सौभाग्य से जहाँ दफ़्तर में मैं बैठा था, वहाँ के अफ़सर ने इन्हें टेलीफोन किया, तभी मुझे ध्यान आ गया कि ये ही अपने मिस्टर किशोरीलाल हैं।

किशोरी—सुनन्दा, तुम्हारे ही कारण आज तो मेरा इनसे परिचय हुआ। यह मेरा सौभाग्य है। पर मैं सोच रहा हूँ धन्यवाद किसे दूँ—तुम्हें या मिस्टर रघुवंश को ?

रघुवंश—किन्तु मैं तो भाई, तुम्हें धन्यवाद दूँगा, जिसके द्वारा सुनन्दा के दर्शन हुए।

किशोरी—(व्यंग्य से) सुनन्दा ने तुम्हारे हृदय में इतनी जगह कर ली है, यह मुझे आज ही मालूम हुआ।

रघुवंश—मिस्टर किशोरीलाल, सुनन्दा के असली पुजारी तो तुम्हीं हो। मैं तो दूर खड़ा रहकर दर्शन करने वालों में से हूँ। (हँसता है।)

किशोरी—पर पुजारी की अपेक्षा भक्त में श्रद्धा अधिक होती है। ठाकुर जी प्रसन्न भी उन्हीं पर होते हैं।

सुनन्दा—(बाहर से खीझती हुई और भीतर से पुलकित, जैसे अपना गौरव कुन्तल को दिखा रही हो) आप भी क्या बात करते हैं ? अरे, मैं भी कैसी हूँ ! बोलिए, क्या पियेंगे मिस्टर रघुवंश !

किशोरी—क्या अब भी रघुवंश बाबू को कोई प्यास है ! मुझे इसमें संदेह है। पर मैं तो···चाय में कितनी देर है। तुम क्या पिओगे ?

रघुवंश—मेरी प्यास तो भाई बढ़ती ही जा रही है, कुछ भी पिला दो, मंजूर है। (किशोरी और रघुवंश दोनों कनखियों से कुन्तल को बार-बार देख लेते हैं। किन्तु बड़प्पन के कारण वे पहले मुँह खोलकर कुन्तल से

बात नहीं कर पाते। फिर भी रघुवंश से रहा नहीं जाता। दीनू दो गिलासों में शरबत लेकर आता है। दोनों पीते हैं। बेचारी कुन्तल की तरफ किसी का ध्यान भी नहीं जाता।)

सुनन्दा—अभी तैयार होती है। मैं महाराजिन से कहती हूँ (कुन्तल से) तुमने शरबत नहीं पिया? अरे दीनू, एक गिलास और ला।

कुन्तल—नहीं रहने दो। तो मैं चलूँ।

सुनन्दा—नहीं नहीं, तुम बैठो। (पति से) ये कुन्तल हैं, आपसे मिलने आई थीं। (कुन्तल से) इनसे बात करो, मैं आई।

किशोरी—(दूर की सोचते हुए) क्या वही, जिनके पति कवि हैं?

सुनन्दा—हाँ वही तो। मैं तुम्हें बता तो चुकी हूँ। एक बार पहले भी यह आई थीं। कानपुर में मेरे पड़ोस के पंडितजी की लड़की हैं। मैं चाय का इन्तजाम करूँ। (जाती है।)

किशोरी—(कुन्तल से) क्या हाल है आप के पतिदेव का? क्या आजकल कुछ काम नहीं करते हैं वे? सुनता हूँ दिन-भर कविता लिखते रहते हैं। मिस्टर रघुवंश, हमारे देश में लोग यह नहीं जान पाते कि जीवन का मूल्य आजकल बदल गया है।

रघुवंश—किन्तु कविता लिखना तो बुरा नहीं है यदि कविता जीवन के लिए भी वैसी ही मूल्यवान हो। यह तो हमारे समाज का कर्तव्य है कि उनके द्वारा भी समाज की उपयोगिता को समझे।

किशोरी—क्या मतलब है तुम्हारा? क्या तुम यह कहते हो कि एक कविता लिखने वाला या गाने वाला समाज के लिए उतना ही हितकर है जितना मेरे और तुम्हारे दर्जे का आदमी, जो समाज तथा सरकार के शासन का आवश्यक अंग है?

रघुवंश—तुमसे और मुझसे भी अधिक मिस्टर किशोरी लाल! तुम और हम, यदि सचाई से देखा जाय तो शासन की क्रूरता की रस्सियों को मजबूत करने वाले पुर्जे हैं, जहाँ कानून की भूमि पर कुछ लोगों के विलास और नृत्य का आयोजन होता है! कुछ लोगों से मेरा मतलब एक पार्टी,

एक प्रकार के विचार के लोगों से है, जो सरकार चलाती है।

किशोरी—(चौंककर) क्या मतलब तुम्हारा ? तो क्या तुम यह कहना चाहते हो कि हमारा कोई अस्तित्व ही नहीं है ?

रघुवंश—अफ़सर उस गिलास के समान है जिसमें जो भी रंग भर दिया जाय, उसी रंग का हो जाता है या उसे वह हो जाना पड़ता है।

किशोरी—हमारे द्वारा सरकारें चलती हैं जनाब ! आप कहते क्या हैं ?

रघुवंश—वही तो मैं कह रहा हूँ। आपका अस्तित्व तो मशीन में डाले जानेवाले तेल के समान है, जिससे सरकार की मशीन चलती है। खैर, क्या मैं जान सकता हूँ कि उन कवि जी का शुभ नाम क्या है।

किशोरी—क्या तुम्हें भी कविता से शौक़ है ?

रघुवंश—कुछ-कुछ। (कुन्तल लज्जित होती है।)

किशोरी—खैर, नाम जाने दीजिए। बताइये वे क्या चाहते हैं !

कुन्तल—मैं ही चाहती हूँ उन्हें कोई काम मिल जाय !

रघुवंश—प्रश्न यह है, क्या वे नौकरी करना पसन्द करेंगे ?

किशोरी—क्या ऐसा भी कोई है जो नौकरी करना पसंद न करेगा ?

रघुवंश—तुम कवियों को नहीं जानते।

किशोरी—तो आप बुला लीजिये न ? अभी बात हो जायगी। वैसे मेरे यहाँ क्लर्कों की नई जगहें खाली हुई हैं। यदि उनको मिल जाय तो मुझे सन्तोष होगा। वे मैट्रिक तो पास होंगे ही !

कुन्तल—मैं चाहती हूँ वे नौकरी कर लें। मैं अभी जाती हूँ। उन्हें बुला लाती हूँ। शायद आ जायँ। (जाती है।)

रघुवंश—मेरी इच्छा है मैं भी उनसे एक बार मिलूँ तो सही।

किशोरी—अरे, अभी आया जाता है। आजकल नौकरी है कहाँ ?

रघुवंश—तुम कवियों की प्रकृति नहीं जानते मिस्टर किशोरीलाल !

सुनन्दा—हलो डियर, क्या कुन्तल गई ? (नौकर चाय और मिठाई लेकर आता है। इतने में मिसेज चोपड़ा टिपटॉप होकर कमरे में प्रवेश

करती है। चोपड़ा लम्बी तड़ंगी, गोरी, पर सुन्दरता से हीन, रंग से पुती, बाँहें पूरी खुलीं, गले के नीचे स्तनों के चमकते किनारे)

चोपड़ा--(आदमियों की तरह ज़ोर से हाथ मिलाकर) हलो सुनन्दा, कैसी हो ? मैं जल्दी नहीं आ सकी। माफ़ करना। हलो मिस्टर किशोरीलाल, कैसे हैं आप ?

किशोरी—आइए मिसेज़ चोपड़ा। कहिये, ठीक तो हैं।

सुनन्दा—और ये मिस्टर रघुवंश एम्बैसी के सेक्रेटरी ! (हाथ मिलाती है) हम तो प्रतीक्षा ही कर रहे थे। हाँ। (पति से) क्या कह गई कुन्तल, सचमुच बड़ी कुशल लड़की है। मैं तो चाहती हूँ उसके मालिक को नौकरी मिल जाय, हालाँकि मुझे ऐसे आदमियों से सख्त नफ़रत है। भला यह भी कोई काम है ! स्टुपिड (चाय प्यालों में डालती है)। लीजिये ! खाइये ! आओ चोपड़ा, ड्रू जस्टिस।

चोपड़ा—किसकी बात हो रही है सुनन्दा ? भई, आज तो तुम्हें मेरे साथ सिनेमा चलना ही होगा। बड़ी अच्छी पिक्चर है।

रघुवंश—मैं मिठाई नहीं खाता। आप लीजिये मिसेज़ चोपड़ा ! (सब बैठकर खाते हैं।)

रघुवंश—मुझे विश्वास नहीं है कि कुन्तल के पति आएँगे।

किशोरी—नहीं आवेंगे तो हमारा क्या नुक्सान है ? कुआँ तो प्यासे के पास जाने से रहा !

सुनन्दा—मिस्टर रघुवंश, डियर, तो हर आदमी की कद्र करते हैं। ऐसा उदार आदमी मैंने तो नहीं देखा।

चोपड़ा—इसमें क्या शक है ! वेरी जनरस मैन।

रघुवंश—(चाय पीता हुआ) ठीक है सुनन्दा देवी, बड़े आदमी छिपते थोड़े ही हैं।

किशोरी—मिसेज़ चोपड़ा, रसगुल्ला लीजिये न !

चोपड़ा—हाँ, हाँ, आप भी खाइये ! ओह, आप तो खाते ही नहीं हैं। आखिर बात क्या है ? लीजिये न !

किशोरी—वैसे मुझे मिठाई भी अच्छी नहीं लगती। डाक्टर ने मना भी किया है।

सुनन्दा—अरे आप तो वैसे ही बैठे हैं? दीनू, अरे ओ दीनू, चाय और ले आ।

रघुवंश—अब चाय नहीं लूँगा। बस पी चुका। मेरी इच्छा है यदि कुन्तल के पति यहाँ न आएँ तो मैं उनसे उनके घर पर मिलूँ। कितनी दूर होगा उनका घर?

किशोरी—(घबराकर) अरे, तुम वहाँ जाओगे, उसके घर?

सुनन्दा—यह नहीं हो सकता मिस्टर रघुवंश!

चोपड़ा—अरे, क्या वह कवि! मिस्टर किशोरी, वी मस्ट हैव ए डिग्निटी। वी हैव ए सोशल स्टेटस!

किशोरी—अफकोर्स! अफकोर्स वी मस्ट!

सुनन्दा—हाउ डेयर यू रघुवंश! कहीं कुन्तल को देखकर·····

रघुवंश—(अट्टहास करके) आप लोग बहुत बड़े युग के हैं। मैं इसमें कोई अपमान अनुभव नहीं करता कि किसी कवि के घर जाऊँ। वैसे यह छोटा बड़ापन कवि की आड़ भी है। शायद हमें समाज की उपयोगिता की दृष्टि से छोटे-बड़े को मानना होगा। कवि क्या छोटे होते हैं?

किशोरी—मेरा आपसे मतभेद है। मैं कविता को 'लग्जरी' मानता हूँ और कवि को व्यर्थ का मनुष्य! इसके अलावा हिन्दी में कवि हैं कहाँ और हिन्दी भी क्या है? तुम भी तो मानोगे यही बात!

रघुवंश—कवि साधारण व्यक्ति नहीं होता। वह हमारे मानस-संसार का स्रष्टा है! हमारे समाज की गतिविधि का द्रष्टा होता है। तुम नहीं जानते, आज हिन्दी कहाँ-से-कहाँ पहुँच गई है। शायद आप इन बातों से बिलकुल अनभिज्ञ हैं।

सुनन्दा—(ताने से) सुनो मिस्टर रघुवंश, यह मैं मानती हूँ कि तुम मेरे क्लास-फेलो हो और एक बड़ी पोस्ट भी होल्ड करने जा रहे हो; किन्तु किसी का अपमान उसके सामने ही तुम्हें करने का अधिकार नहीं है।

रघुवंश—मैं नहीं समझता मि० किशोरीलाल, इसमें मैंने किसी का कोई अपमान किया है ! मैं केवल वास्तविक बात कहता हूँ ! कवि को आप इतना तुच्छ समझ बैठी हैं, यही आपका भ्रम है। हमारे जीवन में रुपये-पैसे, ठाट-बाट के ऊपर भी एक चीज़ है, जिसे संस्कृति कहते हैं। वह मन और मस्तिष्क का निर्माण करती है। वह साहित्य से सुसंस्कृत होकर जीवन को शुभ और परिमार्जित करती है। उस संस्कृति तथा साहित्य से मनुष्य पशुता से ऊपर उठकर वास्तविक मनुष्य बनता है।

चोपड़ा—ये आप कौनसी बोली बोल रहे हैं। अँग्रेजी में कहिये न ! मैं तो एक बात भी नहीं समझी।

(कुन्तल आती है।)

कुन्तल—वे आ रहे हैं, यद्यपि नौकरी करने की बात मैंने उनसे नहीं की।

रघुवंश—वैसा सुनकर वे कदाचित् आते भी नहीं।

सुनन्दा—(बटुए से शीशा निकालकर पाउडर लगाती है। यह देखकर चोपड़ा भी अपना मुँह ठीक करती है।) हाऊ स्टुपिड (चोपड़ा के कान में बातें करती है। कुन्तल कुछ देर तक खड़ी रहती है फिर एक तरफ़ कोने में काउच पर बैठ जाती है। कुन्तल से) तो जब उन्हें नौकरी नहीं करना है तब बुलाने से क्या फ़ायदा ? डियर तो उससे नौकरी की बाबत कहने से रहे। जिसे नौकरी करना हो वही प्रार्थना करे।

कुन्तल—तुम्हीं समझा सकोगी उन्हें दीदी ! मेरी तो हिम्मत होती नहीं।

सुनन्दा—हाँ-हाँ, आने तो दो। देखा जायगा।

चोपड़ा—तो क्या आज सिनेमा नहीं चलोगी ? आप भी चलिये न मिस्टर किशोरीलाल ! आप भी मिस्टर रघुवंश ! बड़ा अच्छा रहेगा। मेरे एक-दो दोस्त भी जा रहे हैं। रात को थोलगा में डिनर का अरेंजमेंट किया है।

किशोरी—सुनन्दा को ले जाइये। मेरा तो मूड नहीं होता। तुम जाओ मि० रघुवंश !

सुनन्दा—तुम न चलोगे डियर। चलो न !

रघुवंश—मुझे सिनेमा से विशेष प्रेम नहीं।

(इसी समय विश्वभूषण कवि प्रवेश करता है। बाल बिखरे, विशाल मस्तक, आँखें सोकर खुमारी भरी-सी, शरीर सुगठित, रंग गोरा, सफेद कुरता खादी का, खादी का ही पायजामा, कुरते की निचली जेब में फाउण्टेन पेन, पैर में चप्पल। उम्र लगभग अट्ठाईस वर्ष, भूषण के नाम से ख्यात। उसको आया जान सब चुप हो जाते हैं। चोपड़ा तथा सुनन्दा ग़ौर से देखने लगती हैं।)

भूषण—(खड़े-खड़े ही) कुन्तल, क्या तुमने मुझे यहीं आने को कहा था ? (कुन्तल खड़ी हो जाती है। सुनन्दा भी प्रभावित होकर आधी खड़ी होती है, फिर बैठ जाती है। रघुवंश उठकर अपने पास जगह करके बैठाने की चेष्टा करता है।) हाँ, क्या वक्त है कुन्तल, देखो मुझे अभी बाहर जाना है। (सामने देखकर) आप लोग·····

कुन्तल—(सुनन्दा की तरफ संकेत करती हुई) यही मेरी दीदी हैं, सुनन्दा, ये इनके·····

रघुवंश—ये मिस्टर किशोरीलाल, डिप्टी सेक्रेटरी, आप इन्हीं के मकान में हैं।

भूषण—ओह ! (चारों तरफ मकान देखता है) सुन्दर चित्र हैं। (एक चित्र की ओर देखता रहता है।)

रघुवंश—आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं चाहता था कि आपके दर्शन करूँ। मेरा नाम रघुवंश है।

सुनन्दा—हिश् ! (सुनन्दा इस प्रकार के परिचय से अप्रसन्न होती है।)

भूषण—(चित्र देखता रहता है, बोलता नहीं) इस चित्र की भूमि सुन्दर है। किन्तु रंगों का चित्रण और विशेषकर स्त्री का चित्र क्या बना है ! उसने सौन्दर्य के आवेश में स्वाभाविकता की हत्या कर दी है।

किशोरी—लोगों ने इसकी बड़ी तारीफ़ की है।

भूषण—(किशोरी की तरफ देखकर विश्वास के साथ) सब लोगों के कलात्मक आँखें नहीं होतीं मिस्टर किशोरीलाल ! आप तो अण्डर सेक्रेटरी हैं न ?

सुनन्दा—डिप्टी सेक्रेटरी, मिस्टर भूषण ? (भीतर-ही-भीतर भुनभुनाती है।)

भूषण—जीवन की अपरूप प्रतिकृति (चैतन्य होकर कुन्तल से) हाँ कुन्तल, (किशोरी से) आप कुछ पढ़ते भी हैं ? (सुनन्दा से) जीवन वास्तविकता में है। सौन्दर्य हृदय की वस्तु है। (मिसेज़ चोपड़ा की तरफ देखकर) ओह आप भी !

रघुवंश—(सहानुभूति से) कुछ चाय-वाय लीजियेगा ?

चोपड़ा—(हाथ की घड़ी देखकर) सुनन्दा बहन !

किशोरी—(सुनन्दा से) आप ही वह कवि हैं ?

सुनन्दा—क्या चाय मँगाऊँ ? मँगाती हूँ ! दीनू, ओ दीनू ! चाय लाओ !

(कुन्तल की ओर देखती है।)

भूषण—जी, यदि कवि होना आपके समाज में बुरा न हो तो। बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा आन्तरिक सौन्दर्य का मनुष्य के लिए सदा से महत्त्व रहा है। किन्तु सौन्दर्य-बोध की अपेक्षा बोध की क्षमता ही मनुष्य की परिष्कृति का लक्षण है। (रघुवंश से) इस बात को आप तो स्वीकार करेंगे।

रघुवंश—जी ! किन्तु सौन्दर्य-ज्ञान ही मनुष्य का अन्तिम ध्येय नहीं है।

भूषण—मैंने अन्तिम ध्येय कब कहा ? मैं तो कहता हूँ वह उसकी परिष्कृति है। (किशोरी से) जो-कुछ हम देखते हैं वही मनुष्य के भीतर प्रतिबिम्बित होता रहता है। उसी से स्वभाव, पर-भाव, क्रियायें, प्रतिक्रियायें बनती रहती हैं। जो लोग आत्म-सौन्दर्य को नहीं देख पाते, अपने हृदय परिष्कार के प्रति जागरूक नहीं रहते वे बाह्य सौन्दर्य द्वारा उस कमी को पूरा करते हैं, जैसे बीमार कपड़े पहन लें। मैं कुंतल से यही कहता हूँ।

ईश्वर पराकाष्ठा का नाम है, क्योंकि उससे बड़ा कुछ भी नहीं है। मैं मनुष्य के अन्तिम ध्येय को उपलब्ध करने की क्षमता रखता हूँ। जैसा कि मैंने जीवन के ऊपर अपनी एक बड़ी कविता में लिखा है, मैं तो मानूँगा कि वहाँ तक पहुँचने के कारण मैं ईश्वर हूँ।

सुनन्दा—(धीरे से) ईश्वर !

रघुवंश—वह आपकी कविता क्या है ?

भूषण—(**सुनन्दा से**) हाँ मैं ईश्वर ! जब मैं देखता हूँ तुम्हारा मानव-समाज बीमार है, मानस रोगी है, अवास्तविकता का दास है। मानवता के विकास की अपेक्षा, आत्मा के सौन्दर्य को पहचानने के अतिरिक्त वह केवल शरीर-सौन्दर्य को वास्तविक मान बैठा है, तब मैं कहता हूँ उसकी दृष्टि में दोष है, वह अस्वस्थ है। और जो मनुष्य की वास्तविक स्वास्थ्य-प्राप्ति में सहायक होता है उसे जीवन की सुन्दरता को पहचानने की शक्ति देता है; उसे सम्पन्न करता है···।

रघुवंश—क्या हर साहित्यिक में, हर कवि में वह क्षमता है कि उसे ईश्वर माना जाय।

भूषण—आप बार-बार भूल जाते हैं, मिस्टर किशोरीलाल !

सुनन्दा—आपका नाम रघुवंश है।

भूषण—मनुष्य के भीतर अनन्त शक्ति का भण्डार है। कोई भी वस्तु उसे बाहर से लेने की आवश्यकता नहीं है। वह स्वयं प्रकाशमय है, केवल उसे जागृत करने, बोधमय बनाने, की आवश्यकता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति महान् हो सकता है। हमारे यहाँ रामायण के वाचक काक-भुशुण्ड थे। उनमें भी ज्ञान इतना जाग्रत हो गया कि वे राम के रूप को समझ सके। तो इसका आशय यह नहीं कि उन्हें कोई जादू कर गया था। वह उनका विकास था, आत्म-बोध का जाग्रत रूप। मनुष्य का कारवाँ व्यक्ति के जन्म के द्वारा असीम पृथ्वी के मैदानों को पार करता जा रहा है। उसमें प्रत्येक व्यक्ति अपना अनुभव उसको बाँट रहा है ताकि उस असीमता को पार करते-करते एक दिन मनुष्य इतना प्रबुद्ध हो जाय कि उसके छल, कपट, पाप,

आडम्बर, असत्य मार्ग में ही समाप्त हो जायँ और वह मनुष्य स्वयं-ज्योति होकर ईश्वर बन जाय।

किशोरी—आप की बात कुछ समझ में नहीं आ रही है। क्या यह कभी सम्भव है कि मनुष्य ईश्वर बन जाय?

भूषण—आप यह मानेंगे कि मुझमें और आपमें जो बौद्धिक अन्तर है वह मनुष्य होते हुए ही तो। फिर आपकी समझ में क्यों नहीं आता।

रघुवंश—तो आप मानते हैं कि सारा मनुष्य-समाज एक दिन वैसा हो जायगा।

भूषण—मुझे मानना चाहिए। मैं मानता हूँ यदि मनुष्य पेपर-वेट है तो घड़ी की तरह प्रगतिशील भी।

चोपड़ा, सुनन्दा—(कौतुक से) वानी?

भूषण—वानी पहला ऐसा, जिसका काम केवल दूसरे को उड़ने से दबाना है।

सुनन्दा—(**प्रसन्नता से**) खूब!

भूषण—आप बड़े आदमी हैं, धनी हैं, यदि आपके धन से, बड़प्पन से समाज को कोई लाभ नहीं है तो आपकी गिनती मेज पर रखे पेपर वेट से की जानी चाहिए। जड़! व्यर्थ का भार!

सुनन्दा—(**सुनसुनाती हुई**) क्या?

चोपड़ा—(**मुँह बनाकर धीरे से**) नान्सेन्स! मैं चलती हूँ सुनन्दा! मुझे पिक्चर जाना है।

भूषण—केवल मनोरंजन या मनोविनोद की अतिशयता, समाज की सबसे बड़ी बीमारी है। आप क्या काम करती हैं जिसके फलस्वरूप आपको मनोरंजन की आवश्यकता होती है?

चोपड़ा—बड़े आदमी काम करने के लिए पैदा नहीं होते। किन्तु मनोरंजन तो आवश्यक है जीवन में!

भूषण—ऐसे पुरुष या स्त्रियाँ, जिनसे समाज को कुछ नहीं मिलता, बकरी के गले में लटकने वाले थनों के समान हैं।

किशोरी—इसका लेखा-जोखा कौन करता है कि समाज का आवश्यक अंग कौन है ?

भूषण—(जोश में) वह जो समाज को मार्ग-प्रदर्शन करने में, मनुष्य के निर्माण में, उसके हित में, अपने जीवन का उत्सर्ग करता है; उसकी चिन्ता में अपनी चिन्ता भूल जाता है; उसकी दशा देखने के लिए, उसका उपचार ढूँढ़ने के लिए दर-दर की खाक छानता है और बदले में तिरस्कार, उपेक्षा, घृणा पाता है। जिसे अपने पेट भरने में व्यस्त समाज आवारा, पागल, निकम्मा समझता है—वह कवि, दार्शनिक, विचारक, सन्त नेता, मिस्टर किशोरीलाल !

किशोरी—(खीझकर) शायद आपका इशारा अपनी तरफ है।

भूषण—"शायद" हटाकर बात कीजिए। तब आपकी समझ में आवेगा। मैं कवि हूँ, सौन्दर्य का सृजन करता हूँ। मानवता के गीत गाता हूँ। मनुष्य-मात्र का कल्याण चाहता हूँ और मनुष्य सृष्टि को उस अवस्था में देखना चाहता हूँ जिससे उसे देवत्व प्राप्त हो। उसके लिए भविष्य का संकेत देता हूँ, जिसके सम्बन्ध में सोचने का आज किसी को भी अवकाश नहीं है। जब कि व्यक्ति अपने पेट की चिन्ता में, अपने वैभव-विलास की खोज में व्यस्त है तब मेरे-जैसों का ही एक ऐसा पागल वर्ग है जो फटे हाल, फाका-मस्त, पैदल, मारा-मारा फिरकर, तिरस्कार पाकर उस जीवन-ज्योति को जलाने में तत्पर है। वह पागल नहीं है तो क्या ? लोग उसे पागल कहते हैं, सिड़ी कहते हैं। किन्तु उसे किसी की चिन्ता नहीं है। वह अपनी बाह्य से हीन अर्ध-चेतन अवस्था में सोचता है, कहता है, गाता है। लोग उसे भार समझते हैं, उसकी प्रशंसा करते हैं, उसके चित्र छापते हैं, और कोई-कोई तो उसे मानते भी हैं। तब मैं आप से पूछता हूँ, क्या उस व्यक्ति का इतना ही पुरस्कार है ?

रघुवंश—वह जनता के पुरस्कार प्रतिष्ठा से ऊपर है।

भूषण—किन्तु अर्थ में।

रघुवंश—उसकी कृति का अर्थ से विनिमय नहीं किया जा सकता।

भूषण—यह आप कहते हैं पर संसार क्या कहता है ? संसार उसे व्यर्थ समझता है। मिस्टर किशोरीलाल बड़े अफसर हैं। कुन्तल ने मुझे उनके घर आने को कहा। वह मेरे घर क्यों नहीं आए ? निश्चय ही यह पद-मर्यादा अर्थ-सापेक्ष है न ?

सुनन्दा—ऐसी बात नहीं है मिस्टर भूषण !

भूषण—अर्थ सदा प्रत्यक्ष के विनिमय में रहता है, लौकिक रूप में, क्योंकि उसकी दृष्टि स्वयं लौकिक है। आप मन्दिर में मूर्ति को एक-दो पैसा चढ़ाते हैं यद्यपि वह भगवान् है; जिस मोटर या ताँगे में बैठकर मन्दिर जाते हैं उसको रुपया या इससे भी अधिक देते हैं या जैसा फैसला हो जाय। ऐसा क्यों ? इसलिए कि अर्थ का विनिमय प्रत्यक्ष लाभ के फल पर निर्धारित होता है। हम तो उन लोगों में हैं, जो भूखे रहकर, दरिद्रता में पलकर संसार के कल्याण की कामना करते हैं। और संसार के दुःख, कष्ट, व्यथा को दृष्टि देते हैं, वाणी देते हैं।

रघुवंश—जी !

किशोरी—बात तो ठीक है। इसीलिए आपका महत्त्व समाज मानता ही है।

भूषण—किस रूप में ?

रघुवंश—आपको समाज का संचालक मानकर, साहित्य-स्रष्टा, हितेच्छु के रूप में।

भूषण—आप मानते हैं ?

रघुवंश—जी !

भूषण—···कि मैं समाज का संचालक हूँ।

रघुवंश—यानी वास्तविक कवि, दार्शनिक, विचारक।

भूषण—तो क्या मैं मिस्टर किशोरीलाल के समान समाज में बड़ा माना जाता हूँ ?

रघुवंश—यह आपके लिए·····(हँसता है)

भूषण—राष्ट्रपति की ?

किशोरी—हाँ, यदि लोग चाहें।

भूषण—और गांधी ? वह मेरे तप पर निर्भर है। किन्तु आप मानेंगे कि कुछ कवि गांधीजी से भी बड़े थे।

किशोरी—जैसे तुलसीदास, सूरदास, शेक्सपियर और भी बहुत से।

भूषण—और आज का कोई कवि ? (चुप्पी) शायद आज कोई ऐसा कवि नहीं है, यही आप कहेंगे। ठीक है। आज के कवि में न तो उतना तप है, न साधना, न आत्म-विश्वास। किन्तु इन्हीं में से कोई-न-कोई वास्तविक कवि बनेगा, जिसके चरणों पर संसार आँखें बिछाएगा। किन्तु वह कवि कैसे बनता है यही मैं आपसे पूछना चाहता हूँ।

रघुवंश—यह तो उसके तप, उसकी प्रतिभा, उसकी तीक्ष्ण-दर्शिता तथा कला की उत्कृष्टता पर निर्भर करता है।

सुनन्दा—मैं मानती हूँ इसके अलावा उसके दुनिया से दूर अपने में लीन रहने पर भी। विश्व के प्राणी-मात्र को अपना मानकर समझने वाला ही वास्तविक कवि है।

भूषण—(हँसकर) अर्थात् भूखे मरकर भी। स्त्री के निरन्तर व्यंग्य तीखे बाण सहकर भी। मुझे तो कुन्तल का दुख है, अपना नहीं सुनन्दा देवी ! किन्तु क्या करूँ मजबूर हूँ !

रघुवंश—किन्तु उसमें लौकिक जीवन की असफलता तो निश्चित है।

किशोरी—लोक-विलास उसके मार्ग में बाधक है, उसके ध्येय के विरुद्ध। वस्तुतः लोगों ने यह काम जितना सरल समझ रखा है उतना ही दुष्कर है।

भूषण—क्या आप इसे पसन्द करते हैं ?

किशोरी—मैं तुच्छ संसारी जीव हूँ, भूषणजी !

भूषण—यदि वैसे बन सकते तो ?

किशोरी—(हँसकर) कभी-कभी रश्क तो होता है।

रघुवंश—भूषण जी ! मनुष्य की एक भूख तो अर्थ अथवा लौकिक व्यापार से तृप्त होती है, दूसरी उसकी भूख है मानसिक। वह स्थायी भूख

है जो सत् साहित्य से मिटती है। उस तृप्ति से मनुष्य के मानस शरीर का निर्माण होता है। वस्तुतः वह मानस शरीर इस परम्परागत सृष्टि के प्राणों में चिर शक्ति, चिर कल्याण होता है। आप उस क्षुधा को शीतल करने के एक साधन हैं। अतः आपका स्थान साधारण अर्थ, साधारण व्यक्तियों से ऊपर है।

सुनन्दा—तो क्या स्त्रियाँ भी कवि हो सकती हैं? किन्तु शायद मैं दावा नहीं कर सकती। (हँसती है।) कुन्तल तुम सचमुच भाग्यवान् हो!

भूषण—यदि यह भाग्यवान का लक्षण है तो मैं आपको निमन्त्रण देता हूँ।

(सब हँसते हैं।)

सुनन्दा—मुझे अपनी शिष्या बना लीजिए।

कुन्तल—दीदी! (हँसती है।)

किशोरी—मेरे लिए यह सब बिलकुल नया है। मैं अब तक मानता था कि कवि का जीवन व्यर्थ का जीवन है।

सुनन्दा—मैं सोचती थी आप ख्याली फिरते हैं। आपको इनसे कहकर नौकरी दिलवा दूँ।

भूषण—तो मैं तैयार हूँ। इससे अच्छी और क्या बात है! कुन्तल भी यही चाहती है।

रघुवंश—किन्तु यह मानव-समाज के प्रति भयंकर अपराध है कि आपको नौकरी दी जाय। अब मुझे याद आ गया। गत रविवार के स्थानीय अंग्रेजी पत्र में जिस पुस्तक के सम्बन्ध में लेख निकला है वह शायद आपकी ही पुस्तक है?

भूषण—जाने दीजिए, वह तो कभी-कभी हो जाता है।

किशोरी—(उत्सुकता से) तो क्या वह लेख इन्हीं के ऊपर है?

रघुवंश—हाँ, लेखक ने उसमें लिखा है कि कवि का मानववादी दृष्टिकोण साहित्य में बिलकुल नया और उचित है। और भी बहुत-कुछ उसमें लिखा है। सचमुच वह मनन करने योग्य है।

किशोरी—मैंने उसे सरसरी निगाह से देखा था। वैसे दफ्तर में कुछ लोग उसकी तारीफ कर रहे थे। अब पढ़ूँगा।

सुनन्दा—तो वह लेख हमारे इन कविजी के ऊपर है। मैंने पढ़ा है वह लेख। यदि उस आलोच्य पुस्तक के लेखक भूषणजी हैं तो आज हमारा सौभाग्य है।

रघुवंश—वैसे भी मैंने इनकी बहुत सी रचनाएँ पढ़ी हैं। मैं इनका भक्त हूँ। ऐसों को नौकरी के लिए बाध्य करना·····हमारे समाज का यह कर्तव्य होना चाहिए कि हम इन्हें लौकिक चिन्ताओं से मुक्त रखें, ताकि ये मानवता की पूर्ण सेवा कर सकें।

भूषण—पिछले दिनों महायुद्ध की आशंका पर, जो कोरिया में हो रहा है, मैंने एक कविता लिखी थी। उसका भारत की सभी भाषाओं में अनुवाद हुआ है।

रघुवंश—कोरिया युद्ध वाली क्या ?

भूषण—हाँ वही।

रघुवंश—शायद आपको नहीं मालूम, अंग्रेजी में उसका अनुवाद मैंने पढ़ा है।

किशोरी—(प्रभावित होकर) तब तो सचमुच आप महान् हैं। यह मेरे देश का सौभाग्य है।

रघुवंश—मैं आपसे कहता न था मिस्टर किशोरीलाल, कवि साधारण नहीं होता, यदि वह वास्तविक कवि हो तो।

चोपड़ा—मैं तो किपलिंग को पोएट मानती हूँ। क्या लिखता है, तबियत फड़क उठे !

भूषण—यह मेरे देश का दुर्भाग्य है।

(सुनन्दा समीप के कमरे में जाती है और हाथ में कुछ दबाकर आती है।)

रघुवंश—यह समाज का, सरकार का कर्तव्य है कि इनके जीवन-निर्वाह के प्रश्न का समाधान करे।

भूषण—वह चाहे जो करे, मुझे इसकी चिन्ता नहीं है। न अपने सम्बन्ध में मुझे सोचने की आवश्यकता है। (चिन्तन मुद्रा में) मैं चला कुन्तल, तुम तो जल्दी आ रही हो न!

सुनन्दा—ठहरिए, यह मेरी तरफ से तुच्छ भेंट। इसे स्वीकार कीजिए।

भूषण—(ठहरकर) क्या है यह? ओह मेरी सहायता! धन्यवाद!

(चला जाता है।)

कुन्तल—यह तुमने क्या किया दीदी?

सुनन्दा—क्यों?

रघुवंश—सुनन्दा, तुम्हारी उदारता को देखकर मैं मुग्ध हो गया। वस्तुतः साहित्यकार के प्रति यही हमारा कर्तव्य होना चाहिए कि उसे हम सांसारिक चिन्ताओं से मुक्त कर दें। साहित्यकार की चिंता-मुक्ति में मानव-समाज का कल्याण निहित है।

किशोरी—तुम ठीक कहते हो रघुवंश, काश कि हम इस वास्तविकता को समझें। (बाहर शोर होता है, जय-जय की आवाज बढ़ती जाती है।) अरे यह कैसा शोर है? दीनू, दीनू! (दीनू कुछ नोट लिये आता है।)

दीनू—सरकार सरकार, वे बाबूजी जो अभी यहाँ से गये···(सब लोग उत्सुकता से देखते हैं।)

सुनन्दा—हाँ तो क्या हुआ? यह नोट कैसे हैं, कहाँ से पाये? यह शोर कैसा है?

दीनू—सरकार, वे बाबू नोट बाँट रहे हैं। मुझे भी दो नोट उन्होंने दिये। कहा, जाओ काम चलाओ। भिखारियों में वे रुपये बाँट रहे हैं।

किशोरी—(उछलकर) क्या कहा? लो सुनन्दा, तुम्हारे रुपये बाँटे जा रहे हैं।

सुनन्दा—(क्रोध से) यह तो रुपयों का बहुत बड़ा दुरुपयोग है। मैं जानती तो·····

रघुवंश—उनकी दृष्टि में यही रुपयों का सदुपयोग है सुनन्दा देवी!

कुन्तल—(खड़ी होकर) दीदी, मैं तुमसे यही कहने जा रही थी। भला उनके पास रुपया रह सकता है?

सुनन्दा—(खड़ी होकर) जाओ जाओ कुन्तल, इसके पूर्व कि वे सब रुपया फकीरों में बाँट दें। जाओ जल्दी जाओ। मैंने यह भेंट उन्हें दी है।

कुन्तल—तो मैं क्या उनको रोक सकती हूँ? जहाँ किसी भिखारी, गरीब, दुखी को देखा कि वह जो जेब में हो, सब दे डालते हैं। यह कोई नई बात तो नहीं है। आप भूखे रहकर, घर आये को खिलाना उनका रोज़ का काम है।

रघुवंश—ऐसे ही आदमी सृष्टि के सुख-दुख को समझते हैं। तुम भाग्यवान हो कुन्तल! जाओ संसार के ताप-तप्त जीवन से खिन्न कवि के प्राणों को अपने आत्म-समर्पण से शीतल करो। इसी में तुम्हारा कल्याण है।

कुन्तल—हाँ तो मेरी यही भूल थी कि मैंने उन्हें साधारण आदमी समझा। अब मेरी आँखें खुल गईं।

चोपड़ा—पर मैं यह न समझ सकी कि वह रुपया क्यों लुटा रहा है। भला गरीबों को रुपया बाँटने से क्या फायदा?

(भिखारियों के जय का नाद बढ़ता जाता है।)

सुनन्दा—सचमुच यही मेरी भेंट का वास्तविक सदुपयोग है कुन्तल! चलो हम भी देखें।

सब—हाँ चलो। यह तो नई बात है। ऐसा तो कभी नहीं देखा।

(नेपथ्य में शोर बढ़ता है, लोग कवि की जय के नारे लगाते हैं।)

बाबूजी

: पात्र :

भोलानाथ	...	पति
शशी	...	पत्नी
अमरनाथ	...	पति
कान्ता	...	पत्नी
केदार	...	भोलानाथ का भाई
रामसिंह	...	नौकर
चुनियाँ	...	नौकरानी
पपी	...	अमरनाथ का बच्चा

[समय शाम के पाँच बजे। एक चौकोर रंग-बिरंगी टाइल्स का सजा हुआ बड़ा कमरा। सामने दीवार पर मकान-मालिक का लाइफ़ साइज़ फोटो। दक्षिण की तरफ़ कानिस्त पर कुछ बस्ट। उसके ऊपर आदमकद शीशा, जिससे कमरे का सामने का भाग दिखाई दे रहा है। एक तरफ़ पश्चिम में सोफासेट; कुछ कुर्सियाँ। पूर्व की तरफ़ दूसरे कमरे में जाने का दरवाज़ा। कमरा इस समय बिलकुल खाली है। दूसरी ओर पूर्व के कमरे से गुनगुनाने की आवाज़ आ रही है जैसे कोई ड्रेसिंग टेबल के सामने खड़ा होकर शृङ्गार कर रहा हो। एक बच्चा कूदता हुआ कमरे में चला आता है और कुछ देर काउच पर बैठ या लेटकर चला जाता है। फिर सुनसान। एकाध बार कानिस्त से कोई चीज़ उठाने एक युवती आती है। फिर दरवाज़े को देखकर लौट जाती है—गुनगुनाती हुई। युवती की उम्र २८ वर्ष, दुहरा शरीर, गोरा रंग, साधारण

रूप, देखने में बुरी नहीं है। हल्की नारंगी रंग की साड़ी पहने है, जिसमें से सफेद पेटीकोट चमकता है। पैरों में पीली मखमली चप्पल। प्रायः सभी पात्र अपटूडेट, पुरुष बिना टाई के, स्त्रियाँ मध्यम वर्ग के शृङ्गार की, साधारण पढ़ी-लिखी हैं। केवल केदार लहमद और सफेद कमीज़ पहने है। केदार को छोड़कर बाकी सब साधारण बुद्धि के लोग आते हैं, जिन्हें स्वार्थ के सामने सब व्यर्थ लगता है। अपने विचारों में, स्वार्थ में मग्न; उनके जीवन में दिखावे का स्थान प्रथम है। इसी समय भोलानाथ प्रवेश करता है।]

भोलानाथ—(हड़बड़ाता हुआ आकर) देवी जी, देवी, भई तुम्हें पाना भी गौरीशंकर की चोटी पाने के समान है। कहीं दिखाई नहीं देतीं।

शशी—(आकर) हाँ, क्या कहते हो? मेरी ढाई मन की लाश भी अगर तुम्हें नहीं दिखाई देती तो क्या कहूँ, चश्मा खराब है। (पास आकर) हाँ, क्या कहते हो, बोलो!

भोलानाथ—एक खुशखबरी सुनाऊँ कि तुम्हारी सहेली अपने पति के साथ आ रही है और अभी···

शशी—(उत्साह से) कौन सहेली?

भोलानाथ—अरे वही तो, क्या नाम है उसका? मेरी याद भी तो ऐसी है जो तुम्हारी मेहरबानी की तरह कभी-कभी आ जाती है।

शशी—हाँ, मैं तो तुमसे लड़ती ही रहती हूँ और जैसे आप बड़े सीधे हैं न!

भोलानाथ—और जैसे तुम बड़ी ही खुर्राट हो। खैर भई, नाम तो उसका याद नहीं, पर वह मेरे दोस्त अमरनाथ की पत्नी है। वही आ रहे हैं। कल इलाहाबाद से उनकी बदली यहाँ हुई है। दफ्तर में मिले और मैंने सोचा, आये हैं तो चाय पर बुला लूँ। तो बस अब आ ही रहे हैं। ज़रा बना डालो न कुछ बढ़िया-सी चीजें। न हो कुछ बाजार से मँगा लो।

शशी—(उसी रूप से) तो यह कहो मेरी सहेली के नाम से अपने दोस्त को बुला रहे हो। मैं जानती हूँ जब कोई काम करना होता है तो

लल्लो-चप्पो करेंगे, बड़ी तारीफ़ करेंगे। कहेंगे तुम ऐसी हो, तुम वैसी हो! (मुस्कराती है।)

भोलानाथ—पर आज तो मैंने कुछ भी नहीं कहा, सिर्फ गौरीशंकर की चोटी की तरह तुम्हें 'अजेय' कह दिया है। और भई तुम्हारी तारीफ नहीं करेंगे तो क्या दाढ़ी-मूँछ के आदमी की तारीफ़ करेंगे। तुमसे तो कला सार्थक है देवी जी!

शशी—अच्छा, अच्छा हुआ। कितने आदमी हैं?

भोलानाथ—दो अदद। एक औरत और एक आदमी। और शायद कोई बच्चा हो, हालांकि उम्मीद नहीं है। हम लोगों की तरह वह लंगार नहीं लिये फिरते।

शशी—(व्यंग्य से) हूँ, तो मेरे बच्चे तुम्हें लंगार लगते हैं। लोग तरसते हैं, बच्चों का मुँह देखने के लिए मिन्नतें करते हैं। तब कहीं इनका मुँह देखने को मिलता है।

भोलानाथ—अरे होगा, पर आज के जमाने में तो ज्यादा बच्चे होना खैर···जरा जल्दी करो। अभी दस-पाँच मिनट में वे लोग आ ही रहे होंगे।

शशी—बस, यही बात मुझे बुरी लगती है। हर वक्त ताना मारते रहोगे। (चुप्पी) नाराज न हो मैं जाती हूँ, तुम यहाँ मेज-कुर्सी ठीक कराओ, मैं चाय का पानी रखे देती हूँ। (जाती है।)

भोलानाथ—रामसिंह, इधर आओ।

नौकर—(दूर से) हाँ, आवे बड़े भैया!

भोलानाथ—देखो, इस कमरे को जरा साफ़ तो कर दो। दरी-वरी ठीक से बिछा दो, दो-तीन आदमी चाय पीने आने वाले हैं।

नौकर—अच्छा, बड़े भैया!

भोलानाथ—मैं कपड़े बदलकर आता हूँ और देखो वे तस्वीरें भी जरा साफ़ कर देना। बाबू जी की तस्वीर जरा टेढ़ी हो गई है इसे भी ठीक कर देना, हाँ!

नौकर—बाबूजी की यह तस्वीर उन्हीं के कमरे में लगा दूँ बड़े भैया·····

भोलानाथ—नहीं नहीं, तुझसे जो कहा सो कर, मैं अभी आया।

(नौकर गुनगुनाता हुआ झाड़-पोंछ करता है। शशी का प्रवेश)

शशी—हो गया ठीक रामसिंह ? जा, बाजार जाकर मिठाई तो ले आ। जल्दी जा।

(भोलानाथ का प्रवेश)

भोलानाथ—बस, यह ठीक रहेगा। नीचे बैठने का इन्तजाम भी बुरा नहीं है। फिर जिसको काउच पर बैठना हो वह भी दूर नहीं है।

शशी—हो गया ठीक। मिठाई रामसिंह लेने गया है। असल में बात यह है, इस कमरे के बिना हमारा गुजारा नहीं है।

भोलानाथ—सो तो है ही। बाबूजी नहीं चाहते थे कि यह कमरा उनसे कोई ले, पर मैं तो तुम जानो बाबूजी का ही लड़का हूँ न। (हँसता है।) (पदचाप) लो आ गए। आओ भई, अमरनाथ !

शशी—कौन ? (पहचानकर) अरे कान्ता तू है ? आ आ ले बैठ, बैठ जा।

भोलानाथ—कहा नहीं था तुम्हारी सहेली। पर हमारी बात पर कोई विश्वास करे तब न। आओ भाई अमरनाथ। मैंने इनसे कहा कि वह तुम्हारी सहेली हैं।

कान्ता—(मुस्कराकर) तो तुम्हें तो मालूम था भाभी !

शशी—क्या बताऊँ याद ही नहीं रही निगोड़ी। नाम भी तो नहीं बताया इन्होंने।

कान्ता—मेरा तो यह मकान चप्पा-चप्पा देखा हुआ है, मैंने इनसे कहा भी था।

अमरनाथ—मुझे क्या मालूम, बल्कि इन्होंने ही मुझे रास्ता बतलाया भोलानाथ !

शशी—यह कोई नई बात नहीं है, हर समझदार औरत अपने पति

को रास्ता बताती है।

भोलानाथ—(**हँसकर**) और कभी-कभी ऐसा रास्ता दिखाती है कि···

अमरनाथ—(**उसी स्वर में**) दिखाती नहीं है, बनाती है भोलानाथ, कि चलते-चलते जिन्दगी का छोर आ पहुँचता है फिर भी लगता है रास्ता कहीं नहीं है।

कान्ता—(**ताने के साथ**) यह तो अपने-अपने चलने के ऊपर है। इसमें दूसरे का क्या दोष ? क्यों, शशी ?

शशी—(**हँसकर**) कम-से-कम मैं इतना कह सकती हूँ कि स्त्री का बताया रास्ता आदमी कम भूलता है। अरी, तू इधर बैठ। बैठ न !

भोलानाथ—मैंने भी सोचा कि अपना हिन्दुस्तानी ढंग बुरा नहीं है। अच्छा है। कुर्सी-मेज मुझे पसन्द भी नहीं हैं। और कोई कोट-पतलून वाला हो तो काउच भी है।

अमरनाथ—ठीक है, ठीक है। आदमी 'एट ईज' रहता है। पप्पी, यहाँ आ जाओ, यहाँ बैठो बेटा। नहीं तो जाओ खेलो, बाहर खेलो। जाओ।

शशी—(**कान्ता से**) तू कब आई, सुना है यहाँ की बदली हो गई है।

कान्ता—हाँ, कल ही आये हैं हम लोग।

भोलानाथ—बहुत दिनों बाद मिले दोस्त, कहो ठीक तो ? (**शशी से**) तो जाओ चाय हाँ हाँ···।

अमरनाथ—हाँ, ठीक चल रहा है। जमाना कैसा जा रहा है भोलानाथ, कुछ भी निश्चय नहीं है कल क्या हो जायगा।

शशी—मैं चाय लाती हूँ। तू बैठ कान्ता, यहाँ बैठ। (**जाती है।**)

भोलानाथ—अब तो क्लास टू में होंगे। चलो अच्छा है, बहुत अच्छा है। हम तो कहते हैं आदमी की तरक्की होती रहे चाहे सारा जमाना भाड़ में जाय। और कौन हमने दुनिया का ठेका ले रखा है। सबका अपना-अपना भाग है, क्यों (**हाथ मारकर**) है न अमरनाथ ?

कान्ता—(पति से) देखो, यह इनके बाबूजी की तस्वीर है।

अमरनाथ—हाँ अच्छी है। बड़े रौब-दाबवाले मालूम होते हैं।

भोलानाथ—क्या पूछते हो अमरनाथ, पाँच सौ रुपये तो बनवाई दी है। भाइयों ने चाहा कि यह तस्वीर हम ले लें। मैंने कहा और चाहे कुछ ले लो, पर तस्वीर मैं नहीं दूँगा। रोज़ दर्शन करता हूँ हाथ जोड़कर। दिन अच्छा बीत जाता है। ठीक है न!

शशी—रामसिंह, ले आया सब? यहाँ रख दे। मिठाई, नमकीन, फल वगैरा, चाय यहाँ।

भोलानाथ—चाय यहाँ मोमजामे पर रख। लो भई, पियो। बड़ी कृपा की तुमने।

कान्ता—मैं इनसे सदा कहती थी भैया और भाभी का स्वभाव बहुत अच्छा है।

अमरनाथ—और मैं इससे कहता था कि भोलानाथ का स्वभाव बताने की कोई जरूरत नहीं है, वह मेरे क्लास-फेलो रहे हैं। भाभी की तुम जानो।

कान्ता—तो मेरी बात झूठ तो नहीं निकली।

अमरनाथ—और मेरी बात झूठ है। (हँसता है।)

भोलानाथ—मेरा खयाल है तुम दोनों की बात झूठ है। अरे, हम भी कोई आदमी हैं? पूरे गावदू, मिट्टी के माधो हैं। पर नहीं, यह मैंने अपने लिए कहा है, शशी के लिए नहीं है यह बात। अच्छा, चाय तो पियो, लो इन्हें भी मिठाई-विठाई दो न। मैं कहता हूँ ज़िन्दगी हँसी-खुशी से गुज़ार लेने का नाम है।

अमरनाथ—आजकल जैसे भी गुज़र जाय, ग़नीमत है भोलानाथ भाई!

कान्ता—यह सब तस्वीरें बाबूजी के जमाने की हैं। पहले यह कमरा उन्हीं का था, क्यों भाभी?

भोलानाथ—क्यों, क्या है रामसिंह?

रामसिंह—नीचे कोई बुला रहे हैं।

भोलानाथ—अमरनाथ, मैं अभी आया। तुम तब तक चाय पियो। देखूँ कौन है।

(जाता है।)

शशी—जल्दी आना। हाँ कान्ता, यह कमरा पहले उन्हीं का था। अब हमारा है।

(हल्की-सी आवाज़ आती है—'पानी, पानी')

शशी—सभी देवर चाहते थे कि यह कमरा हमको मिले, हमको मिले, इधर बाबूजी भी छोड़ना नहीं चाहते थे। इन्होंने कहा और सब ले लो पर यह कमरा मैं नहीं दूँगा।

कान्ता—फिर?

शशी—फिर क्या, एक बार मेरे भाई आये। तुम जानो हमारे पास भी तो दो ही कमरे थे। कहाँ ठहराते? मैंने इसी कमरे में लाकर उन्हें ठहरा दिया। पहले तो बाबूजी को बुरा लगा, फिर साथवाले कमरे में थोड़े दिन के लिए चले गए। लो एक प्याला और लो न।

कान्ता—हाँ, तुम भी एक और लोगे?

अमरनाथ—ले लूँगा।

कान्ता—बड़ा अच्छा कमरा है। हवादार और बड़ा भी है।

शशी—असल में यह कमरा बाबूजी ने अपने बैठने के लिए बनवाया था। पर हम कहाँ जायँ? वह बूढ़े हो गए। काम न धाम, दिन-भर पड़े रहना। ('पानी-पानी' की आवाज़)

कान्ता—यह कौन है?

शशी—कोई नहीं। अरी, तूने यह मिठाई तो खाई ही नहीं। ले न! आप भी लीजिए न अमरनाथ बाबू!

अमरनाथ—जी ले रहा हूँ। मालूम होता है भोलानाथ बाबू जल्दी नहीं लौटेंगे।

('पानी' 'पानी' की आवाज़)

यह कौन हैं, क्या इनको कोई पानी देने वाला नहीं है ?

शशी—अभी नौकर आता होगा, पानी दे देगा। इन्हें कुछ काम तो है नहीं, जहाँ किसी को कुछ काम करते देखेंगे, फ़ौरन कोई काम बता देंगे। खाना खायेंगे तो बीस तुक निकालेंगे—इसमें नमक नहीं है, इसमें मिर्च ज़्यादा है, यह उबला हुआ है, ठण्डा है, बहुत गरम है। इसलिए मैंने इनका खाना बनाना ही छोड़ दिया है। कहाँ तक करती ! मैं तो इनके कमरे में जाती भी नहीं। (जाती है।)

अमरनाथ—तो पानी दे आइए न।

शशी—(दौड़कर आती हुई) देख कान्ता, ये तस्वीरें मैंने बनाई हैं।

अमरनाथ—वाह बहुत अच्छी हैं ! अरे, आप तो बड़ी चित्रकार हैं ! वाह, क्या खूबसूरत रंग भरे हैं !

कान्ता—भाभी, सचमुच भाई वाह, तुम तो गुणों की गुथली निकलीं।

शशी—यह श्रवणकुमार की तस्वीर है। यह तस्वीर मुझे बहुत प्यारी लगती है।

(भोलानाथ आता है।)

भोलानाथ—अच्छा, शशी की चित्रकला देखी जा रही है ! खूब है, क्यों अमरनाथ, क्या सलाह है, यह श्रवणकुमार की तस्वीर कैसी रही, बुरी नहीं है। हमारे घर में सबको पसन्द है। कन्धे पर माँ-बाप को लिये श्रवणकुमार। पितृ-भक्ति की एकमात्र कहानी।

अमरनाथ—बहुत सुन्दर है, पर मुझे तो बूढ़ी सास का चित्र पसन्द आया। (हँसता है।) वाह, क्या तस्वीर बनाई है ! बुढ़िया को गहनों से लाद दिया है।

भोलानाथ—यह गलत नहीं है। अमरनाथ, क्या तुमने ऐसी सासें नहीं देखीं ? मैंने तो जब पहले-पहल तस्वीर देखी तो हँसते-हँसते लोट-पोट हो गया।

कान्ता—देखूँ। (हँसती ही जाती है।) सचमुच आजकल ऐसी सासें भी होती हैं—बूढ़ी, पर नाज़-नखरे, सिंगार-पटार दिन-भर करती रहती

हैं। कहाँ जायँगी ये चुड़ियाँ, और देखो तो तीन-तीन गहने गले में, नाक में नथ, कानों में टॉप्स, हाथों में कड़े चूड़ियाँ, अनन्त, मरो तुम ! (हँसती है) भाभी, गजब कर दिया तुमने तो !

('पानी-पानी' की आवाज़)

भोलानाथ—(चिल्लाकर) रामसिंह, पानी दे दे बाबूजी को।

रामसिंह—(दूर से ही) देता हूँ। देता हूँ, ज़रा काम कर लूँ।

भोलानाथ—(धीरे से) सबसे नाराज़ हैं। बच्चों को तो खाने को दौड़ते हैं। इनमें से कोई जा थोड़े ही सकता है उनके पास !

अमरनाथ—आप लोग बड़े भाग्यशाली हैं, इतना बड़ा मकान, इतने भाई-बहन, बच्चों से भरा-पूरा है। अच्छा, आज्ञा दो भोलानाथ, चलें।

("पानी दे दो कोई पानी")

शशी—अरे बैठिए न, खाना खाकर जाइएगा।

कान्ता—नहीं भाभी, फिर कभी। (केदार आता है।) ओ केदार भैया !

केदार—अरे तू कान्ता, इतनी बड़ी हो गई। लड़कियाँ बाँस की तरह बढ़ती हैं, आज एक फुट, कल दो फुट। परसों चार और दो-तीन वर्ष बाद देखो तो ऊपर-नीचे सभी जगह वे-ही-वे दिखाई देंगी। अभी कल तक इसे मुँह धोने का शऊर नहीं था, क्यों कान्ता ? (हँसता है।)

कान्ता—तुम्हें तो अभी तक धोती बाँधना भी नहीं आया केदार, धोती है कि बुहारी !

भोलानाथ—हमारा केदार फिलासफर है, फिलासफर। किताब भली या आप !

शशी—खाना खा लेंगे और कहेंगे अरे, खाना तो खाया ही नहीं।

केदार—भाई साहब, दुनिया बहुत तेज़ी से बदल रही है। मुमकिन है कुछ दिनों बाद हम लोग यह तुम्हारा आज का खाना छोड़ दें और इसकी बजाय खास तरह का रासायनिक भोजन किया जाय। और यह कभी-

कभी उत्सवों में ही लिया जाय। फिर अनाज इतना ज़्यादा पैदा करने की भी ज़रूरत नहीं रहेगी। उन उत्सवों में हम लोग कहा करेंगे, धरती के चने की पकौड़ियाँ या असली मटर का चाप, जमीन की खास गाय के दूध की खीर।

शशी—फिर खायेंगे क्या केदार?

केदार—सुनो, इस दुनिया ने दो महायुद्ध एक ही ज़िन्दगी में देखे हैं। इसमें विज्ञान ने जो चमत्कारिक प्रयोग किये वे दुनिया को बदल डालने के लिए काफ़ी हैं। अभी थोड़े दिनों बाद हम लोग चन्द्र लोक तक पहुँच जायँगे। वहाँ पृथ्वी के वायुमण्डल का अभाव होगा, इसलिए आदमी अपने साथ वायुमण्डल भी ले जायगा। हाँ, शुक्र और मंगल तक पहुँचने में हमें समय लगेगा, क्योंकि मंगललोक में चन्द्र लोक से भी कम वायु-मण्डल है। शुक्रलोक का वायुमण्डल बहुत ज़हरीला है। बुध बहुत गरम है। बाकी लोक बहुत ठण्डे हैं।

अमरनाथ—फिर हमारी भूमि का क्या होगा?

केदार—हमारी भूमि भी बदल जायगी। सहारा की मरुभूमि में खूब-सूरत शहर बस जायँगे। आस्ट्रेलिया की मध्यभूमि, जहाँ आज एक तिनका नहीं उगता, हरी-भरी हो जायगी। खैर असली बात यह है कि हम लोगों के सम्बन्ध भी काम-चलाऊ होंगे। ये दया, करुणा, माया आदि फिजूल की चीजों के लिए हमारे मन में कोई जगह नहीं होगी। मैं नहीं मानता जिसको दुनिया में कोई ज़रूरत नहीं है, वह ज़िन्दा रहे और हम सिर्फ उसे इसलिए ज़िन्दा रखें कि कभी वह हमारी थी या हमारे साथ उसका कोई लगाव था।

भोलानाथ—मालूम होता है आज कोई नई किताब पढ़ी है।

केदार—नई तो रोज ही पढ़ता हूँ। बात यह है भाई साहब, बाबूजी का कमरा मुझे चाहिए, मैं बच्चों में रहकर पढ़ नहीं सकता। किल-खिल, किल-खिल मुझे अच्छी नहीं लगती। यह मेरा रोज का काम है। बिना स्टडी के कालेज में जाकर मैं पढ़ाऊँगा भी क्या?

भोलानाथ—यह तो बड़ी मुश्किल है।

केदार—मुश्किल कुछ भी नहीं है। आजकल टैंक तो पहाड़ पर भी चढ़ सकते हैं। मैं अभी आया। (जाता है।)

अमरनाथ—मकान तो बिलकुल नया मालूम होता है। देखो न दीवारें कितनी मजबूत हैं।

भोलानाथ—बिलकुल, अभी दस साल भी तो पूरे नहीं हुए। बाबूजी ने बड़े मन से इसे बनवाया है। दिन-दिन यहाँ रहकर एक-एक ईंट देख-कर लगवाई है। कहते थे, ऐसा मकान बनवा रहा हूँ जो सौ साल तक हिल नहीं सकता।

अमरनाथ—तभी ये टाइल्स जरा देखिए! दीवारें जैसे फ़ौलाद की हों। आलमारियाँ भी कम खूबसूरत नहीं हैं। पक्का रोगन है, ये कानिस्त, ये खिड़कियाँ!

भोलानाथ—बिलकुल पक्का। लकड़ी खास मध्य प्रदेश से मँगवाई। चूना, सीमेंट और लोहा सभी बढ़िया ढंग का लगा है।

अमरनाथ—कितने कमरे हैं?

भोलानाथ—पाँच ऊपर और पाँच नीचे। ऊपर के तीन कमरे मेरे पास हैं। एक में बाबूजी हैं और एक में केदार, उसकी पत्नी और एक बच्चा।

अमरनाथ—तब तो केदार बाबू के पास जगह कम है। नीचे कितने कमरे हैं?

भोलानाथ—नीचे एक में रसोई है, एक में स्टोर है, एक में मेरा छोटा भाई सिद्धनाथ पढ़ता है। एक कमरे में नौकर रहता है।

("पानी दे दो कोई एक गिलास, गला सूखा जा रहा है")

शशी—और हमें बैठने-उठने की थोड़ी-सी तुम जानो आजादी तो चाहिए ही। हमारे पास तीन कमरे भी थोड़े हैं। दो बच्चे छोटे, एक बड़ी लड़की और एक लड़का। दोनों को पढ़ने के लिए जगह चाहिए ही।

केदार बाबू की नज़र हमारे कमरे पर है। पर हम कैसे दे दें? (खाँसने की आवाज़) कहाँ जायँ क्या करें।

कान्ता—सभी जगह मुश्किल है। हम जिनके यहाँ ठहरे हैं, मकान की तंगी उन्हें भी है। हम भी मकान ढूँढ रहे हैं। (केदार आता है।)

केदार—हाँ, तो क्या फैसला हुआ? बात यह है, मुझे अपना थीसिस लिखना है, मुझे जगह चाहिए। मुझे एकान्त चाहिए। फिर एक बात और है। वह रात-रात-भर चिल्लाते हैं, खाँसते हैं, कभी-कभी तो उनकी जोर की खाँसी से भानू डरकर जाग जाता है। फिर कभी-कभी कमरा खराब भी हो जाता है। बेहद दुर्गन्ध उठती है।

भोलानाथ—तो तुम नीचे का कमरा ले लो। वह भी तो अच्छा है।

केदार—वह मुझे नहीं चाहिए। उसकी खिड़की सड़क में खुलती है। वहाँ शोर मचता है। बदबू भी आती है कभी-कभी। मैं वहाँ काम नहीं कर सकता। फिर नीचे का कमरा।

भोलानाथ—बाबूजी का मामला है।

केदार—बाबूजी का मामला तो इस कमरे के लिए भी था।

शशी—केदार को यह बड़ी जलन है कि यह कमरा हमारे पास क्यों आया।

केदार—मुझे कोई जलन नहीं है। जलन तुमको है, क्या तुम्हें यह नहीं सोचना चाहिए कि मैं कितनी मुसीबत में हूँ?

भोलानाथ—तो तुम यह कमरा·····

शशी—(गरजकर) नहीं, यह हरगिज नहीं होगा। कहे देती हूँ यह कमरा मैं कभी किसी को नहीं दूँगी। मुन्नो श्याम कहाँ पढ़ेंगे? मैं कहाँ जाऊँगी।

केदार—(ज़ोर से) तो मकान में हमारा भी हिस्सा है। हम भी मालिक हैं।

("पानी पानी")

शशी—सारा मकान खाली पड़ा है, तुम ले लो उसमें, कोई मना

करता है ?

केदार—तुमसे ज़्यादा मेरा काम ज़रूरी है।

शशी—(चिल्लाकर) काम सबका ज़रूरी है। काम करना चाहो तो यहाँ भी कर सकते हो, न करना हो और जलना हो तो बात दूसरी है।

केदार—चुप हो जाओ।

शशी—तू चुप हो, बकता चला जाता है। न शरम है न हया। (रोती है।)

भोलानाथ—(शशी से) तुम्हीं चुप हो जाओ।

शशी—(रोकर) क्यों चुप हो जाऊँ ? क्या मैं इस घर की कोई भी नहीं हूँ ? क्या मेरा हक़ नहीं है ? मेरा हक है और मैं सबसे बड़ी हूँ, मालकिन हूँ।

अमरनाथ—अच्छा, हमें आज्ञा दीजिए।

भोलानाथ—चलेंगे। अच्छा। न जाने क्या बात का बतंगड़ बना लिया है इन लोगों ने।

अमरनाथ—कोई बात नहीं। जहाँ चार बरतन होते हैं खटकते ही हैं। नमस्कार !

भोलानाथ—नमस्कार !

कान्ता—मैं भी चली भाभी। अच्छा, चलो पप्पी।

पप्पी—ममी, पानी पिऊँगा प्यास लगी है।

शशी—(अपने लड़के को पुकारकर) श्याम, एक गिलास पानी तो ला दे पप्पी को।

भोलानाथ—अरे, इसे न चाय पिलाई न कुछ खिलाया ही। (चिल्लाकर) इसे एक बोतल ला दे बाज़ार से, जा श्याम।

(नेपथ्य से आवाज़ आती है, "अच्छा, अभी लाया।")

हाँ ला दे, देखा देख तो कैसा प्यासा है ? अभी आती है बोतल। अभी अभी। हाँ तो ऐसा करो बाबू जी को नीचे के कमरे में लिटा दो।

शशी—नीचे का कमरा बुरा नहीं है। उन्हें जीना ही कै दिन है ?

भोलानाथ—खैर, यह तो कोई बात नहीं है। तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहिए शशी !

केदार—भाभी की बात गलत नहीं है। मैं तो मानता हूँ मनुष्य की एक उपयोगिता है। वह जब समाप्त हो जाय तो जीने का हक़ उसका कम हो जाता है।

(बोतल आ गई, "पानी रामसिंह क्या तू भी मर गया ?")

भोलानाथ—दे दे। लो पीओ बेटा, जाने कब का प्यासा था लड़का !

दोनों—अच्छा हम चले।

अमरनाथ—केदार बाबू, आपकी फिलासफी चाहे कल के लिए अच्छी हो जब मनुष्य मनुष्य न रहकर पशु बन जाय पर आज तो·····("पानी दे दो कोई पानी")

भोलानाथ—(क्रोध से) मैं आया, पानी दे आऊँ। न जाने रामसिंह को·····(जाता है।)

केदार—मनुष्य को रेशनल दृष्टिकोण रखने की जरूरत है। बुड्ढे-लंगड़े बैलों को गोशाला में पालने का जमाना गया। क्या आप नहीं मानते कि चारे का देश में कितना अभाव है, फिर अच्छी दूध देने वाली गायों को वह चारा न देकर उन निकम्मे बैलों को चारा नहीं खिलाया जा सकता। उसकी कोई उपयोगिता भी तो नहीं है, उन सब को अपनी मौत मरने देना चाहिए। यह संकट का जमाना है, अमरनाथ बाबू !

भोलानाथ—(लौटकर) बाबूजी की तबियत बहुत खराब है। बहुत ज़ोर से मत बोलो। मैंने उनसे कह दिया है, वे नीचे जा रहे हैं।

केदार—(उछलकर) मान गए वे ? यह बहुत अच्छा हुआ।

(सब चले जाते हैं। रामसिंह बुहारी लेकर कमरा साफ़ करने आता है। कुछ सोचने लगता है। उसके पीछे चुनियाँ आती है।)

चुनियाँ—क्या सोच रहे हो रामसिंह ?

रामसिंह—सोच रहा हूँ बुढ़ापा बहुत बुरा है। जो कभी घर का मालिक था, जिसके कहने पर घर के सब लोग नाचते थे, खुश होते थे,

नाराज़ होने पर काँपते थे, आज उसकी क्या हालत है !

चुनियाँ—क्यों क्या हुआ ?

रामसिंह—बड़े चाव से मकान बनवाया था। उसमें भी अपना कमरा अलग बनवाया था जैसे यह यहीं रहेंगे। सात-आठ साल भी नहीं रह पाये कि वह ज़बरदस्ती खाली करना पड़ा।

चुनियाँ—क्यों ?

रामसिंह—क्यों, अरी तू तब आई ही थी। एक दिन बड़ी बहू ने अपने भाई को बुलाकर बाबू जी के कमरे में ठहरा दिया। कहा, हमारे पास कमरा नहीं है। मेहमान है। बाबू जी के कमरे में एक खाट डाल दो। बस, खाट डाल दी गई। उन्होंने मना भी किया, पर एक दिन वह ज़रा बाहर गए तो देखा एक खाट, कुछ सामान उनके कमरे में रखा है। बाबू जी ने देखा तो चुप रह गए। बोले कुछ भी नहीं। इसके साथ ही मुझसे कहकर अपनी खाट दूसरे कमरे में डलवा ली।

चुनियाँ—उन्हें तो बहुत बुरा लगा होगा।

रामसिंह किसी ने उनके बुरे लगने का ख्याल ही नहीं किया। बस, तब से बड़ी बहू ने उसे अपने कब्ज़े में कर लिया। एकाध बार बाबू जी ने कहा भी तो किसी ने जवाब तक नहीं दिया। बड़ी बहू ने भीतर का दरवाज़ा खोलकर बाहर से उसमें ताला डाल दिया। बाबू जी क्या करते, चुप रह गए। अब उनका पुराना कमरा केदार बाबू ने छीन लिया। अब वे नीचे के कमरे में जा रहे हैं, किसी को फ़ुसत नहीं है कि उनसे कोई बात भी करे।

चुनियाँ—बड़ा कष्ट है बूढ़े को, तुम तो देख लिया करो, पुराने नौकर हो उनके। बड़े भले हैं बिचारे, आज को बड़ी बीबीजी होतीं।

रामसिंह—आज को बड़ी बीबीजी होतीं तो उन्हें ही कौन सुख मिलता। बड़े भैया के यहाँ तो बड़ी बहू की चलती है। उससे वह ऐसे डरते हैं कि बोलती बन्द हो जाती है उसके सामने।

चुनियाँ—और केदार बाबू ?

रामसिंह—वह उनसे भी दो कदम आगे हैं। बीबी को लेकर अकेले

बाहर चले जायँगे सिनेमा देखने। कभी बड़े बाबूजी से बोलते भी नहीं हैं। सामने होते ही 'कहिए क्या हाल है? कालिज में काम बहुत है,' कहकर चले जायँगे।

चुनियाँ—उनकी बहू भी तो बड़ी चालाक है, मुझसे बोलने में भी अपनी हेटी समझती है। बस किताब लिए पढ़ती रहेगी। सिद्धनाथ बाबू कुछ अच्छे हैं।

रामसिंह—हाँ वह अकेला लड़का है। सो वह बाहर रहता है। असली पूछो तो थोड़ी-बहुत देखभाल वही करता है।

चुनियाँ—तुम देखा करो, मुझे तो उनके पास जाने में शर्म आती है। कभी-कभी नंगे पड़े रहते हैं, इसी से मैं डरती हूँ।

रामसिंह—(**आह भरकर**) क्या करूँ, मैं तो बहुत कुछ करूँ पर वह बड़ी बहू, मझली बहू के काम से फुर्सत मिले तब न। जहाँ मुझे उनके पास देखा कि कोई-न-कोई काम बता देंगी। तो बाबूजी कहते हैं जा रामसिंह, देख क्या कहती है। बस, चला जाता हूँ।

चुनियाँ—अपने हाथ से पानी भी तो नहीं पी सकते, हाथ इतने काँपते हैं। अभी सवेरे मैंने पानी का गिलास पकड़ाया तो गिर गया। सिर पर हाथ रखते हैं तो काँपते-काँपते सिर नीचे गिर जाता है, पानी माँगते हैं तो आवाज़ में ज़रा भी तेज़ी नहीं रहती।

रामसिंह—यही बाबूजी थे जिनकी एक तेज़ आवाज़ सुनकर घर-भर काँप उठता था, सब सहम जाते थे; घर में घुसते तो सबको साँप सूँघ जाता था, जो सामने पड़ गया उसी की मानो स्यामत आगई।

चुनियाँ—दिनों का फेर है। इसी से कहते हैं, आदमी को चाहिए नब कर चले।

रामसिंह—(**साँस लेकर**) हाँ सो तो है ही चुनियाँ, न जाने मेरा क्या हाल होगा। देख नहीं रही, पड़ोस के रईस लाला सुन्दरलाल को क्या हालत हुई, कैसे कष्ट में जान निकली।'

चुनियाँ—बड़े कृतघ्न लड़के हैं उनके रामसिंह!

रामसिंह—सो तो है ही। भोलानाथ बाबू का लड़का इतना तेज़ है कि न माँ को मेंटता है न बाप को, जो चाहता है करता है, मजाल है कोई रोक तो दे।

चुनियाँ—प्यार के पले बच्चे ऐसे ही होते हैं रामसिंह!

(भोलानाथ और उसकी पत्नी आते हैं। रामसिंह चुनियाँ खिसक जाते हैं।)

शशी—तुम्हें कुछ ध्यान भी है कि पराई लड़की क्या कहेगी, उसके माँ-बाप क्या कहेंगे।

भोलानाथ—तो तुम अपना एक कमरा खाली कर दो।

शशी—(चिल्लाकर) बस, मेरे कमरों पर दाँत हैं, जब देखो तब दे दो कमरा, दे दो अपना कमरा। दे दो फिर, मुझे क्या? (रोने लगती है।) दे दो।

भोलानाथ—तो क्या चाहती हो, क्या करूँ?

शशी—करोगे क्या, अपना कमरा दे दो, सामान उठाकर बाहर फेंक दो। मरी मुझे मौत भी तो नहीं आती। (रोकर) भेज दो मुझे मेरे बाप के यहाँ, निकाल दो मुझे।

भोलानाथ—(नर्म पड़कर) तो बाबा बताओ भी कुछ, क्या करूँ?

शशी—नई बहू आई है तो उसे भी तो कमरा चाहिए। सिद्धनाथ के पास सिर्फ एक खाट का कमरा है, बाबूजी जिस कमरे में गए हैं वह सिद्धनाथ और उसकी बहू को दे दो और सिद्धनाथ वाला कमरा बाबूजी को दे दो।

भोलानाथ—पर वह तो बहुत छोटा है। उसमें सिर्फ एक खाट आती है, एक मेज़ और एकाध कुरसी···

शशी—तो बाबूजी को कौन वहाँ कचहरी करनी है?

भोलानाथ—पर तुम सोचो तो, लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे?

शशी—लोग एक दिन कहेंगे तो दूसरे दिन चुप हो जाएँगे। और कहेंगे तो कहा करें, ज्यादा हेज है तो बाबूजी को अपने घर में ले जाएँ।

भोलानाथ—सोच लो, लोग तुम्हें दोष देंगे।

शशी—पर तुम बताओ आज सिद्धनाथ बिचारा अपनी बहू को लेकर कहाँ रहे ? ऐसा ही था तो बाबूजी मकान बनाते समय सारी बातें सोचते, उसी हिसाब से कमरे बनवाते, अब कौन भोगे उनका किया ? हम भोगें ?

भोलानाथ—उन्होंने तो मकान के पास जो खाली जगह छोड़ी है, वह हमीं लोगों के लिए तो। अब उसमें गाय बँधती है, और एक झोंपड़ा है, जिसमें ग्वाला रहता है, और नीम का पेड़ तो इतना घना है कि दोपहर को तुम्हारे कमरों में क्या ठण्डक होगी।

शशी—(ताने से) तो ऐसा करो कि अपना बिस्तरा वहाँ पेड़ के नीचे लगा लो।

भोलानाथ—अच्छा। (सोचकर) कब आ रही है सिद्धनाथ की बहू ?

शशी—आज नहीं तो कल, कभी भी आ सकती है। इसीलिए कहती हूँ कि आने पर कमरा तैयार मिले, नहीं तो मुझे ही कमरा देना पड़ेगा। और जबसे बाबूजी नीचे गए हैं तबसे चैन है, नहीं तो पानी-पानी चिल्लाकर हाथ-पाँव फुला देते थे।

भोलानाथ—तो ठीक है, बाबूजी को सिद्धनाथ वाला कमरा दे दो, और सिद्धनाथ को बाबू जी वाला। (चिल्लाकर) रामसिंह, रामसिंह !

रामसिंह—जी बड़े भैया।

भोलानाथ—रामसिंह चुनियाँ को ले जाओ और सिद्धनाथ वाले कमरे में बाबूजी को लिटा दो, और देखो, सिद्धनाथ की बहू आ रही है, सो बाबूजी के कमरे में सिद्धनाथ का सामान रख दो।

रामसिंह—पर बड़े भैया·····

भोलानाथ—(चिल्लाकर) बड़े भैया क्या, हाँ, क्या कहता है, कह ?

रामसिंह—बाबूजी को वह बहुत छोटा रहेगा।

भोलानाथ—अरे, छोटा क्या है, उनकी खाट ही तो है, बाकी पानी-वानी, दवादारू के लिए एक मेज बस + जा रख दे सब सामान जल्दी।

रामसिंह—बड़े भैया, तुम मालिक हो पर·····

भोलानाथ—पर क्या ? जाओ !

शशी—यह रामसिंह एक और मुसीबत है। (चिल्लाकर) जो काम कहा जाता है करता क्यों नहीं, तू जा बक-बक मत कर।

रामसिंह—जी !

(केदार का प्रवेश)

केदार—इस स्वर्ग में कहीं नरक है तो बाबूजी का कमरा। चार बार फिनायल से धुलाने के बाद भी बदबू अब तक नहीं गई। होगीबल ! बाइफ़ कहती हैं डिस-इनफेक्ट कराओ, तब मैं जाऊँगी। वही सोच रहा हूँ, दीवारें भी साफ करानी होंगी, ह्वाइट वाश कराना होगा, ह्वाइट वाश।

भोलानाथ—बाबूजी को सिद्धनाथ वाले कमरे में भेज रहा हूँ। वह कमरा छोटा है। एक खाट और एक छोटी मेज़ उसमें बड़े मज़े से आती है।

केदार—तो क्या वह खाली हो रहा है, मैं उसमें अपनी किताबें रख दूँ, पढ़ूँगा ऊपर।

भोलानाथ—वह कमरा सिद्धनाथ को दिया जा रहा है, उसकी बहू आ रही है न ?

केदार—ओह, आई सी। हाँ, सिद्ध को भी तो एक कमरा चाहिए। वह बड़ा भी है ठीक रहेगा।

भोलानाथ—अब और उन्हें चाहिए भी क्या, एक खाट की जगह बस। मनुष्य को गुज़ारे के लिए साढ़े तीन हाथ जगह चाहिए, वैसे तो चाहे जितना कर लो।

केदार—कब्र में शायद इससे भी कम·····

भोलानाथ—हिन्दुओं में कब्र की ज़रूरत नहीं होती केदार, वहाँ तो आखिर इतना भी नहीं चाहिए, वहाँ तो ज़मीन की ज़रूरत ही नहीं।

केदार—हिन्दू रिलीजस सचमुच महान है। आदमी को लेटने के लिए साढ़े तीन हाथ ज़मीन की ज़रूरत है और बैठने के लिए एक हाथ भी मान

सकते हैं, और खड़े होने पर दो पैर, पर मरने पर उतनी भी नहीं।

भोलानाथ—गुड, तू तो सचमुच दार्शनिक हो गया है।

(रामसिंह आता है। तांगे की खड़-खड़)

रामसिंह—सिद्धनाथ बाबू आ गए बड़े भैया!

भोलानाथ—तो उसको बाबूजी के कमरे में ठहराओ। बहू आ गई? वहीं असबाब रखो।

रामसिंह—हाँ, बहू भी आ गई, बड़ी बहू वगैरा सब वहीं हैं।

(शोर मचता है।)

भोलानाथ—यह अच्छा ही हुआ जो पहले से इन्तज़ाम कर दिया, वरना बड़ी मुश्किल होती। और बाबूजी को जीना ही कै दिन है, फिर वह कमरा श्याम को दे दूँगा।

केदार—मैं सोचता हूँ, गाय वाले घर को साफ़ कराकर कुछ कमरे बनवा लिए जायँ।

भोलानाथ—मैं भी यही सोच रहा हूँ केदार।

केदार—लेकिन गाय वहाँ नहीं बँध सकती, मैं इसके ख़िलाफ़ हूँ। इससे मकान साफ़ नहीं रहता, बदबू, मच्छर आते हैं।

भोलानाथ—तो गाय को निकाल देंगे।

केदार—काश कि हम लोग ज़िन्दगी की उपयोगिता जान सकते, उसे ठीक-ठीक समझ पाते।

भोलानाथ—यही बात है केदार, संसार में मनुष्यों की संख्या इतनी बढ़ गई है कि जीते रहना दूभर हो उठा है।

केदार—मशहूर वैज्ञानिक जेम्स जौन्स की बाबत कहा जाता है कि एक बार वे एक बैंक की सीढ़ियाँ उतर रहे थे तो एकाएक एक ख़याल उनके दिमाग में आया कि हमारी ज़मीन से कोई भूला-भटका ग्रह टकरा जाय तो·····

भोलानाथ—अजब मज़ाक की बात है। उन्हें सीढ़ियाँ उतरते ही यह ख़याल आया। ये तुम्हारे वैज्ञानिक भी बड़े अजीब किस्म के आदमी होते हैं।

केदार—आपको मालूम नहीं है, उनकी इस बात से तमाम वैज्ञानिकों में एक खलबली मच गई। लोग सोचने लगे यदि इस पृथ्वी से कोई ग्रह आकर टकरा गया तो लोग कहाँ रहेंगे, कहाँ जायँगे।

भोलानाथ—तो क्या वाकई कोई ग्रह ऐसा था, या है जो ज़मीन से टकरा जायगा।

केदार—११ जून १९५० की रात को वैज्ञानिकों ने बड़ी-बड़ी दूरबीनों से देखा कि एक पुच्छल तारा बड़ी तेज़ी से हमारी ज़मीन की ओर आ रहा है। यदि उसकी दिशा न बदली या ज़मीन इसके रास्ते से न हटी तो हमारी यह पृथ्वी ध्वस्त हो जायगी। धूमकेतु के इस दर्शन ने वैज्ञानिकों में एक नई समस्या पैदा कर दी है।

भोलानाथ—तू गप तो नहीं मार रहा?

केदार—मैं सच कह रहा हूँ भाई साहब, वैज्ञानिक इसी खोज में तब से लगे हैं।

भोलानाथ—कब तक आ जायगा वह धूमकेतु हमारी ज़मीन पर?

केदार—आ नहीं जायगा, टकरा जायगा। फिर सब-कुछ समाप्त। लेकिन उसके हमारी पृथ्वी तक आकर टकराने में कई हज़ार साल लगेंगे।

रामसिंह—बड़े भैया, बड़े भैया, बहुत बुरा हुआ। श्याम बाबू ने सिद्धनाथ बाबू के कमरे पर कब्ज़ा कर लिया, अपनी किताबें, मेज़, कुरसियाँ लाकर रख दी हैं।

भोलानाथ—और बाबूजी?

रामसिंह—उनकी खाट बाहर करके मैंने वह पहले सिद्धनाथ बाबू को दिया जाने वाला कमरा साफ़ किया, फिर जब मैं उनका कमरा जो बाबू जी को दिया जाने वाला था, धोकर इधर-उधर काम में लग गया, कि सूखने पर उनकी खाट वहाँ डाल दूँगा, तो इसी बीच में क्या देखता हूँ कि श्याम बाबू ने वह कमरा हथिया लिया है।

केदार—श्याम को इतनी जल्दी कमरा नहीं चाहिए, उसे इन्तज़ार करना चाहिए।

भोलानाथ—फिर बाबूजी कहाँ हैं ?

रामसिंह—वह बाहर आँगन में हैं, राम बाबू उनके पास बैठे हैं।

भोलानाथ—वे नाराज़ तो नहीं हैं।

रामसिंह—नहीं, हँस-हँसकर उनसे बातें कर रहे हैं। जब सिद्धनाथ बाबू की बहू ने आकर उनके पैर छुए तो खुश होकर आशीर्वाद दिया और खाट पर लेट गए, उसके बाद एकदम वे अपने में डूब गए !

भोलानाथ—तो ऐसा करो, तब तक उनकी खाट नीम के नीचे घेर में डाल दो।

रामसिंह—खुले आसमान में बड़े भैया ?

केदार—क्या हर्ज है ? रवीन्द्रनाथ तो खुले आसमान के नीचे बैठकर छात्रों को पढ़ाने के पक्ष में थे ?

भोलानाथ—जब तक कोई इन्तजाम नहीं होता तब तक नीम के नीचे घनी छाया में उनकी खाट बुरी नहीं रहेगी। क्यों केदार ?

रामसिंह—श्याम बाबू को ज़रा डाँट देते तो वह कमरा उन्हें दे देता सरकार !

भोलानाथ—वह लड़का ज़िद्दी है, कहना पड़ेगा। खैर, तुम ऐसा करो, बाज़ार जाकर एक कनात ले आओ, खाट के चारों ओर लगा दो, वहीं फ़िलहाल ठीक रहेगा। अरे रोता क्यों है, जा जो कहता हूँ सो कर।

रामसिंह—(आँसू पोंछकर) बड़े भैया···

केदार—स्टुपिड, यह नहीं जानता कि बन हू गिव्स अप मोस्ट, सर्व्स बेस्ट, जो अधिक त्याग करता है, वही फ़ायदे में रहता है। (शशी आती है।)

शशी—(दौड़कर) मैं कहे देती हूँ, लड़के का मन न तोड़ना, उसने सिद्धनाथ के पहले कमरे में अपने पढ़ने का सामान रख लिया है।

भोलानाथ—तुम बेफिक्र रहो शशी, मैंने फिलहाल बाबूजी का इन्तज़ाम कर लिया है। उनकी खाट नीम के नीचे डलवा दी है। उसकी छाया में उन्हें कोई कष्ट नहीं होगा। सबसे बड़ी बात है आदमी को आराम

मिलना चाहिए, जहाँ भी मिले, क्यों केदार ?

केदार—बेशक, किसी दार्शनिक ने कहा है जो कल करो उसकी तैयारी आज से शुरू कर दो, काम ठीक होगा।

भोलानाथ—बिलकुल, बिलकुल। फिर एक बात है नीम के पेड़ के नीचे रहना स्वास्थ्य के लिए बड़ा अच्छा है। कहते हैं नीम के नीचे रहने वालों की उम्र बढ़ जाती है, बीमारी पास नहीं फटकती।

केदार—मुझे कोई एतराज नहीं है। सबसे बड़ा फायदा तो यह है कि उन्हें आगे ले जाने में अब ज्यादा सहूलियत होगी।

भोलानाथ—(भविष्य की ओर देखता-सा) हां, और क्या ! चलो देखा जाय !

(चले जाते हैं।)

यह स्वतन्त्रता का युग !

: पात्र :

जयन्त	....	प्रोफेसर
मीना	....	प्रोफेसर की पत्नी
आगंतुक (इकराम)	....	सौन्दर्य-प्रतियोगिता संघ का कार्यकर्त्ता
रामसुख भाई	....	रेस खेलने वाला सेठ
मोतीलाल	....	गुलाब मिल्स का स्वामी
भोला, श्यामा, नया आदमी	....	नौकर, एक साल का एक बच्चा आदि

[एक लम्बा कमरा, जिसमें पश्चिमाभिमुख एक मेज़, बाईं तरफ अंगरेज़ी पुस्तकों से भरी एक अलमारी, जो टेबल से सटी हुई है। टेबल के सीधी तरफ पुस्तकों का शेल्फ, पीछे कुर्सी, सामने सोफा-सेट, बीच में मेज़ पर फूलदान, पूर्व और पश्चिम दोनों तरफ़ दो दरवाज़े बाहर जाते हैं। कमरे में कुछ नये ढंग के चित्र, सामने कार्निस पर तीन नंगे बस्ट, जिनमें दो स्त्रियों के व एक पुरुष का। इस समय कमरा खाली है, केवल एक नौकर झाड़ा-पोंछी कर रहा है, नौकर चालीस साल से ऊपर का लग रहा है। दाढ़ी के बाल बढ़े हुए, रंग काला, काली टोपी, कमीज़-पाजामा पहने हुए। मुँह से गुनगुनाता है, जैसे गाना गा रहा हो। एकदम कार्निस झाड़ता हुआ चौंकता है। समय—दिन के तीन बजे। नौकर का नाम है भोला।]

भोला—शियामा, शियामा, ओ शियामा! इधर आएगा तुम? आज फिर एक टो चीज़ गाइब हो गिया।

श्यामा—(भीतर कमरे से। काली, बदशक्ल, मोटी औरत, पतली आवाज़ में) मैं बाबा को ले रही हूँ, भोला! बहुत बीमार है।

भोला—पर कानिष्ट का एक टो तस्वीर काँ गिया। हम क्या बोलेगा शाब कूँ। नौकरी करता है कि चोरी करता है? मैं शाला नौकर···

श्यामा—(लपककर कमरे में आ जाती है।) मैं क्या जानूँ, कहाँ गई तस्वीर? कौनसी तस्वीर, कहाँ की तस्वीर, कैसी तस्वीर?

भोला—मैं···मैं···तुम्हारा मूँड, कानिष्ट का एक टो तस्वीर काँ गिया? तुम और हम टो जने हैं हियाँ, फिर आस्मान खा गिया शाला या हम खा गिया। क्या बोलेगा शाब कूँ, मेम शाब कूँ?

श्यामा—(चिल्लाकर) मुझे क्या मालूम? मैं तो अभी पन्द्रह दिन से आई हूँ। मुझसे नौकरी नहीं होती। मैं नौकरी छोड़ दूँगी। महीना-भर हो जाय, मैं चली जाऊँगी। यहाँ रोज़ एक-न-एक चोरी लगती है।

भोला—तो हम चोर हैं शाला···

श्यामा—मैं क्या जानूँ, कौन चोर है?

भोला—बाबा को बीमार कर दिया और चोरी किया। हर रोज़ डबल कमाई, डबल। अब हम क्या करेगा शाला, बताओ शियामा। एक टो तस्वीर शवेरे तक रखा था, दश बजे ठीक था, बारह बजे ठीक था, अब क्या हो गिया? ज़मीन खा गिया कि हम खा गिया।

श्यामा—(चिल्लाकर) देखो भोला, बहुत बक-बक मत करो। मैं कुछ नहीं जानती। मैंने नहीं देखी तुम्हारी तस्वीर। आज मैं नई नौकरी नहीं कर रही हूँ। डेविड के यहाँ छः महीने नौकरी की, महमूद साहब के यहाँ तीन महीने, मेठिया के यहाँ पाँच महीने। मैं कोई चोर हूँ?

भोला—हम भी पाँच महीने से हियाँ नौकरी करता है। हम चक्रावर्टी का नौकरी किया, बट्टाचार का नौकरी किया। आशाम में नौकरी किया, बंगाल में नौकरी किया, अब बम्बई में। कोई चोरी नहीं किया। फिर

तस्वीर काँ गिया शाला; हम खा गिया के तुम खा गिया; काँ गिया? **(बच्चा दूसरे कमरे में रोने लगता है। श्यामा जाकर चुप कराती है। बच्चा ज़ोर-ज़ोर से रोता है।)** गोड में लेकर चुप कराओ, पालना में नहीं, शियामा!

श्यामा—**(वहीं से चिल्लाकर)** ओ बाबा, ओ बाबा, रो मत। रोकर, चिल्लाकर मर जायगा क्या? **(थोड़ी देर बाद चिल्लाते रहने पर)** नहीं चुप होता, तो रो। **(पालने में पटक देती है। बच्चा और भी ज़ोर से चिल्लाने लगता है।)**

भोला—पियार से, शियामा, पियार से करो। प्रोफ़ेसर आता होगा। टी-टाइम हो गिया। तुमको भी एक कप टी देगा। पियार से करो।

श्यामा—**(बच्चे को रोता छोड़कर)** रोने दो, मैं क्या करूँ? मुए का भाग ही ऐसा है। जब माँ नहीं परवा करती, बाप नहीं परवा करता, तो मैंने ही कौन इसे जिलाने का ठेका ले रखा है।

भोला—टीक केता है तुम शियामा। यह ज़माना औरत का है शियामा। ओः, आज तो तुम शुरमा लगाया है, शुरमा। तुम्हारा हस्बैंड काँ गिया शियामा?

श्यामा—अच्छा लगता है मुझे काजल, भोला? **(बच्चा रोता रहता है।)** रो रहा है, रोने दो, मरने दो। मैं क्या करूँ?

भोला—**(गाकर)** शुरमा लगाओ गोरी, शुरमा लगाओ। बाबा को चुप कराओ पियार से शियामा। कितना रोता है शाला? रोता ही जाता है। अभी शाब आता होगा। हम पसन्द हैं शियामा। हमने भी एक किया था, बड़ा सुन्दर था, मर गिया। हमारा एक आँख बीमारी में खो गिया, शियामा, काना होने से क्या हुआ? तू भी तो काला है, मोटा भैंस-सा। हम तुम से गोरा है।

श्यामा—मुझ से? मुँह तो धो पहले। मुझ से ब्याह करेगा?

भोला—कौन है तेरा मालिक?

श्यामा—बैंक का जमादार। बड़े रौब से चलता है। **(बच्चा रोता है, श्यामा उसे एक थप्पड़ मारती है)** ले और रो। **(वह चिल्लाकर रोने**

लगता है)

भोला—शाब आता होगा। नाराज होगा, शियामा। चुप कराओ पियार से, शियामा। कह दूँगा तस्वीर फूट गई। फिर क्या? ओः शाब।

(प्रोफ़ेसर जयन्त का प्रवेश)

जयन्त—क्या है? बच्चा क्यों रो रहा है? श्यामा, क्यों रो रहा है बाबा? मीना कहाँ गई? तुम लोग देख रहे हो और बच्चा रो रहा है! कैसी तबीयत है अब?

श्यामा—(बच्चे को लेकर, जो रो रहा है) आज तो बहुत रो रहा है, बाबूजी। मैं तो गोद में लिये हो बराबर फिर रही हूँ सबेरे से।

जयन्त—डॉक्टर को दिखाया?

श्यामा—जी, सबेरे दिखाया था। दवा दी थी।

जयन्त—फिर?

श्यामा—बुखार नहीं उतरा। हाँ-हाँ बाबा, मेरा प्यारा बाबा! (गोद में लेकर हिलाती है। बच्चा रोता ही जाता है।)

जयन्त—बुखार अभी काफ़ी तेज़ है। इसे उढ़ाकर रखो न। बदन ढँक दो। (अपनी गोद में लेता है।) बाबा, बाबा! (चुप हो जाता है।) ठीक हो जाओगे। (पुचकारता है।) ठीक हो जाओगे। श्यामा, मीना कहाँ है?

श्यामा—वे तो एक बाबू और एक बीबी जी के साथ सबेरे की गईं, तब से नहीं लौटीं।

जयन्त—खाना?

श्यामा—खाना भी नहीं खाया। जाते समय कहा, 'लंच मैं आज बाहर ही करूँगी, तुम लोग खा लेना।'

जयन्त—इसको बीमार छोड़कर चली गई! तुमने कहा नहीं?

श्यामा—वे जानती थीं।

जयन्त—इसे गोद में रखो। और देखो, किस समय डॉक्टर ने दवा देने को कहा था? लाओ शीशी।

श्यामा—(शीशी लाकर दिखाती है।) यह लीजिए।

जयन्त—इसमें से एक ही खुराक दी गई है। समय पर पूरी खुराक देनी चाहिए थी। प्रिस्क्रिप्शन, अब तक तीन मात्रा दवा दे देनी थी। दवाई तो दी नहीं, आराम कहाँ से होता ?

श्यामा—सरकार !

जयन्त—सरकार सरकार क्या ? पूरी मात्रा तो देनी थी। अब एक दे दो।

श्यामा—बहुत अच्छा। (दरवाज़े पर ठक्-ठक् की आवाज़)

जयन्त—भोला, देख कौन है।

भोला—अच्छा, शाब। (लौटकर) कोई बाबू है। बीबीजी को पूछ रही है। बुलाऊँ ?

जयन्त—तुमने क्या कहा ? बुला लो न।

(भोला के साथ एक व्यक्ति का प्रवेश)

आगन्तुक—माफ कीजिए। मीनादेवी से···

जयन्त—कहिए।

आगन्तुक—उन्हीं से कुछ काम था। उन्होंने मुझे समय दिया था दो बजे का, ज़रा देर हो गई। क्या वे नहीं हैं ?

जयन्त—वे तो कहीं बाहर गई हुई हैं।

आगन्तुक—मैं मालूम कर सकता हूँ ?

जयन्त—मुझे स्वयं नहीं मालूम। कोई खास बात है ?

आगन्तुक—हमारे यहाँ एक ब्यूटी-कंटेस्ट चल रहा है। उनकी इच्छा थी कि उन्हें भी शामिल कर लिया जाय।

जयन्त—जी !

आगन्तुक—अगले सप्ताह कंटेस्ट होगा। हर तरह के उनके पोज़ लेने होंगे। इसीलिए आया था।

जयन्त—पर वे तो हैं नहीं।

आगन्तुक—अच्छा, माफ़ कीजिए। वे आपकी वाइफ़ हैं ?

जयन्त—मेरा विश्वास सन्देह में बदल रहा है।

आगन्तुक—मैं फिर मिल लूँगा। यह मेरा कार्ड है। हो सके तो वे टेलीफ़ोन कर लें। (जाता है।)

जयन्त—दो घंटे बाद एक बार दवा फिर देना। श्यामा, तुम्हें इतना नहीं मालूम कि दवा ठीक समय पर देनी चाहिए।

श्यामा—मैं पढ़ी हुई नहीं हूँ, सरकार!

जयन्त—इसमें तो ऐसी कोई बात नहीं है। खैर, ले जाओ बाबा को। सो गया है। आराम से लिटा देना। और भोला से कहो, चाय ले आए।

श्यामा—जी, बहुत अच्छा। (चिल्लाकर) भोला, ओ भोला, साहब की चाय ले आओ। (बच्चा जागकर रोता है।)

जयन्त—(धीरे से) इतने जोर से चिल्लाने की क्या जरूरत थी? चुपचाप लिटाने के बाद जाकर धीरे से कहती। (गोद में बच्चे को हिलाता है, वह रोता है।) हूँ-हूँ बाबा, रो मत। (वह और भी रोता है।)

श्यामा—लाइए, मैं ले लूँ। (दस्तक)

जयन्त—ले जाओ इसे सुला दो। (आगन्तुक लौटता है।)

आगन्तुक—माफ़ कीजिए, डिस्टर्ब किया। एक बात···

जयन्त—कोई बात नहीं।

आगन्तुक—बात यह है···बात यह है···अगर आपको अनुचित न मालूम हो तो मैं थोड़ी देर यहाँ बैठकर उनका इन्तज़ार कर लूँ। बात यह है···उन्होंने मुझे टाइम दिया था। नहीं तो रहने दीजिए, मैं बाहर खड़ा रहूँगा या फिर आ जाऊँगा। (उठने लगता है।)

जयन्त—यह ब्यूटी-कंटेस्ट क्या है?

आगन्तुक—बात यह है, बी आर होल्डिंग ए ब्यूटी-कंटेस्ट आन ऐन ऑल इंडिया स्केल। तो हम उसमें भाग लेने के लिए सभी तरह से सुन्दर स्त्रियों को इन्वाइट कर रहे हैं। पहले यूरोप में ही यह प्रतियोगिता होती थी, अब स्वतन्त्र होने के बाद से इस देश में भी इसकी शाखें खुली

हैं। शहर के बहुत बड़े आदमी इस एसोसिएशन में हैं।

जयन्त—जी !

आगन्तुक—बम्बई से कुछ खास स्त्रियों को हम ले रहे हैं।

जयन्त—खास से आपका क्या मतलब है ?

आगन्तुक—मोस्ट ब्यूटिफुल, हर तरह से ठीक, खूबसूरत।

जयन्त—जी !

आगन्तुक—मीनादेवी भी हमारे खयाल से उसमें शामिल हो सकती हैं।

जयन्त—खयाल से क्या मतलब है आपका ?

आगन्तुक—यानी हर तरह से ठीक। इसमें साधारण तौर पर शरीर की ऊँचाई, वज़न, शरीर-गठन, सुडौलपन, रूप, आकर्षण, वैसे आँखें एक खास किस्म की, नाक की उठान, उसकी मोड़, होंठ न बहुत पतले न मोटे, दाँत, माथा, भौंहें, गला, कमर वगैरह···

जयन्त—तो मीना में ये बातें आपको मिलती हैं ?

आगन्तुक—बहुत हद तक। कुछ हम डॉक्टरों की मदद से बना सकते हैं। हमारे यहाँ ऐसे एक्सपर्ट हैं जो इस काम में उन्हें मदद दे सकते हैं।

जयन्त—तो देश की स्वतन्त्रता के बाद यह बहुत बड़ा काम आपने उठा लिया है।

आगन्तुक—सभी तरह से देश को उन्नत करना है न। आप जानते हैं और आप मानेंगे कि हम किसी मामले में किसी से पीछे क्यों रहें ?

जयन्त—तो मेरी स्त्री ही आपको इस काम के लिए मिली ?

आगन्तुक—जी···यह आपका सौभाग्य है और बम्बई का कि यहाँ मीनादेवी-जैसी, वैसे और भी हैं। हम देखेंगे, शरीर के हर अंग से जो खूबसूरत हों, उन्हें चुनेंगे। असल में आज ही तो दुनिया ने स्त्रियों के सौन्दर्य की कीमत पहचानी है।

जयन्त—जी !

आगन्तुक—आज तो स्त्रियाँ ही नहीं, उनका प्रत्येक सुन्दर अंग भी इंश्योर्ड होता है। अभी एक नर्तकी की मूर्ति का १२,५०० पौंड का बीमा हुआ है। रीता हेवर्थ की टाँगों का बीमा हुआ है।

जयन्त—टाँगों का बीमा ?

आगन्तुक—जी। मामूली बात नहीं है। आज दुनिया बदल रही है। विचार बदल रहे हैं। उसकी टाँगों की खूबसूरती का बीमा ३०,००० का हुआ है। इन्दुरानी रहमान की बाबत भी आप सुन चुके होंगे।

भोला—चाय शाब।

जयन्त—आप चाय पीयेंगे ?

आगन्तुक—जी, पी लूँगा एक प्याला। वैसे मैं अभी-अभी पीकर चला आ रहा हूँ। हमारा मिशन बड़ा ऊँचा है। लेकिन लोग हैं, जो इसे पसन्द नहीं करते।

जयन्त—भोला, एक प्याला आपको दो। हूँ, लोग वाकई बेवकूफ़ हैं, जो अपनी औरतें और लड़कियाँ आपके सुपुर्द नहीं कर देते।

आगन्तुक—जी मेरा मतलब···

जयन्त—आपका मतलब मैं समझ गया। देश की उन्नति का सबसे बड़ा राज यह है कि स्त्रियों को आपके पास आने की खुली छुट्टी दे दी जाय और आप उनको नापें-तोलें, उनकी आँख, कान, नाक, होंठ, गला, छाती, कमर, पिंडलियाँ, पैर अपने ढंग से नापें, तोलें, देखें, परखें, क्यों ?

आगन्तुक—जी, मेरा मतलब···

जयन्त—और आपका क्या मतलब है ?

आगन्तुक—देश की स्त्रियों में सौन्दर्य का विचार पैदाकर, उनकी सुन्दरता को प्रकट करके देश···

जयन्त—उन्हें घरों से निकालकर बाहर ले आना और दुनिया की लालचाई वासना की आँखों का शिकार बना देना। चाय पीजिए न आप···

आगन्तुक—जी, पी रहा हूँ। बस, और नहीं लूँगा। शायद आप

बुरा मान गए।

जयन्त—मैं बुरा मानने वाला कौन होता हूँ? मीना स्वतन्त्र है। उसकी स्वतन्त्रता में मैं बाधा देने वाला कौन हूँ?

आगन्तुक—आप देखेंगे कि उनको इनाम मिलता है।

जयन्त—मुझे जो अब इनाम मिल रहा है, वही क्या कम है मिस्टर? आज तीन दिन से लड़का बीमार है। ब्रांकाइटस का अटैक उसे हो गया है, लेकिन देवी जी को बाहर से फ़ुर्सत नहीं है। खैर, जाने दीजिए।

आगन्तुक—मुझे आज्ञा दीजिए। मैंने आपको तक़लीफ़ दी।

जयन्त—जायँगे आप? अच्छा। मैं कह दूँगा। तो आपने उनको इस कंटेस्ट के लिए फ़िट तो समझा ही होगा—आँख, कान, नाक, पिंडली, छाती, पसली देखकर।

आगन्तुक—क्या आप नाराज़ हो रहे हैं?

जयन्त—यह स्वतन्त्रता का युग है न। आपके घर से कोई स्त्री इस कंटेस्ट के लायक···

आगन्तुक—जी नहीं, मैंने अभी शादी नहीं की।

जयन्त—(घूरकर) ओह, तो आप विश्वास भी तो नहीं करते होंगे शादी में। खैर, यह आपका काम सचमुच बड़े महत्त्व का है। इसके बिना देश की उन्नति नहीं हो सकती।

आगन्तुक—मैं तो सेवक हूँ। मैं मानता हूँ, जिस आदमी में जो भी गुण हो, उसी से वह देश की सेवा करे तो···

जयन्त—जल्दी देश की उन्नति हो सकती है। एकदम ऊपर उठ जायगा हमारा यह पिछड़ा देश।

आगन्तुक—वे अभी नहीं आ रही हैं। मैं चलूँगा।

जयन्त—जाइएगा? अच्छा। (जाता है। दरवाज़े पर दस्तक) देखो भोला कौन है।

भोला—जी। (एक व्यक्ति का प्रवेश)

जयन्त—कहिए।

नवयुवक—मीना देवी से मिलना है। वे···

जयन्त—वे तो हैं नहीं। आपको···

नवयुवक—जी···(फिसफिसाते हुए) जी···मैं फिर मिल लूँगा। उन्हें मैं सभी जगह देख आया हूँ, क्लब में, मालाबार हिल···न जाने कहाँ हैं? यहाँ भी नहीं।

जयन्त—आपको क्या काम है?

नवयुवक—बहुत जरूरी मिलना है। उन्हें रेस का मैं···

जयन्त—रेस···हाँ, वहाँ क्या है?

नवयुवक—आज उन्हें रेस जाना था। मैंने टिकट ले लिया है। उन्हें लेने आया हूँ। उन्होंने मुझे समय दिया था।

जयन्त—आपको उन्होंने समय दिया था?

नवयुवक—जी।

जयन्त—रेस में उन्हें क्यों जाना था?

नवयुवक—मेरे चार घोड़े हैं। वे दौड़ रहे हैं।

जयन्त—तो अपने घोड़े दिखाइएगा उन्हें और रेस जिताइएगा?

नवयुवक—उनका पता लग सकता है?

(माँ-माँ-माँ करके बच्चा रोने लगता है। आया प्यार-पुचकार कर चुप कराती है, फिर भी ज़ोर-ज़ोर से रोता है।)

जयन्त—मैं अभी आया। (भीतर चला जाता है, भोला आता है।)

नवयुवक—तुम इस घर में नौकर हो, भला कहाँ हैं मीनादेवी?

भोला—शायद से कहीं गिया है। मालूम नहीं।

नवयुवक—यह उनके कौन हैं?

भोला—शाब।

नवयुवक—यह मीना का ही बच्चा है, बीमार है?

भोला—जी!

नवयुवक—मीनादेवी आएँ तो उन्हें यह कार्ड देना और चुपके से कहना कि हमें टेलीफ़ोन कर लें। हम शाम तक उनका इन्तज़ार करेंगे।

भला, याद करके। यह चिट्ठी भी। (लिखकर देता है।) यह लो, एक रुपया इनाम। साहब को मालूम न हो। मैं जाता हूँ। (चला जाता है। इसी समय जयन्त आता है।)

जयन्त—वह आदमी कहाँ गया?

भोला—चला गिया शाब।

जयन्त—चला गया। यह क्या है?

भोला—चिट्ठी मेम शाब का। दे गिया है। यह कार्ड भी।

जयन्त—देखूँ। (पढ़ता है।) "प्रिये मीना, तुम नहीं मिलीं। कहीं भी नहीं मिलीं। आज रेस में तुम्हें लेने आया था। टिकट भी ले लिया है। उसके बाद डिनर होगा ताज में। तुम इसी पते पर ज़रूर आना, ज़रूर, ज़रूर। तुम्हारा—रामसुखभाई टाकरसी।" हूँ! भोला, मैं डॉक्टर के पास जा रहा हूँ। तब तक बच्चे का ध्यान रखना।

भोला—अच्छा शाब, अच्छा। बाबा बहुत बीमार हो गिया है।

(एक ओर से जयन्त जाता है, दूसरी ओर से मीना आती है।)

मीना—भोला, श्यामा, कहाँ हो तुम? कहाँ मर गए? ज़रा मैं बाहर गई और घर खाली हुआ। ये बाबा, बाबा क्यों रो रहा है?

श्यामा, भोला—(दोनों दौड़कर) जी, जी! जी, जी!

मीना—जी, जी! (तड़ककर) क्या बात है? क्यों रो रहा है, बाबा?

श्यामा—बाबा बीमार है न। वह आपके लिए······

मीना—(उसी स्वर में) मेरे लिए बीमार है। मैं जानती हूँ बीमार है। तो तुम लोग क्या घास छीलने को रह गए हो? क्यों रोता है? ज़रा बाहर गई और बाबा ने कुहराम मचाया। लाओ उसे। (श्यामा बच्चे को लाकर देती है।)

श्यामा—लीजिए, आपकी याद में बार-बार माँ-माँ-माँ कहता है।

मीना—(गोद में लेकर मुँह चूमती है।) बाबा! ओः, इसके मुँह से बदबू आ रही है! दूध दिया? डॉक्टर को दिखा देना था। साहब···

भोला—शाब डॉक्टर के पास गिया है। बाबा बीमार है।

मीना—अरे हाँ, सुन लिया, हजार बार सुन लिया बीमार है। बच्चे बीमार नहीं होते क्या? बीमार होते हैं तो उनकी हिफ़ाजत करनी चाहिए। लो, मेरी गोद में आते ही कैसे चुप हो गया। रखना आवे तब न! प्यार करो, प्रेम से रखो, बचा रहेगा।

श्यामा—आप माँ हैं न।

मीना—तो माँ होने से क्या होता है? रखना आना चाहिए। तुझे रखना ही नहीं आता। ले इसे। कोई आया था?

भोला—दो शाब आया था। एक ठो चीठी। लीजिए।

मीना—ला चिट्ठी। ओ, रामसुखभाई ठाकरसी! स्टुपिड। मैं नहीं जाऊँगी। और कौन था? अच्छा देखो, मैं जा रही हूँ। जरा कुछ दिनों के लिए जा रही हूँ। बाबा का इलाज कराओ, ठीक हो जायगा। कोई खास बात नहीं है। साहब हैं, वे इसकी देखभाल करेंगे। श्यामा, तू इसे प्यार से रखना। तेरी तनख्वाह बढ़ा दूँगी। और कौन था?

श्यामा—एक बड़े खूबसूरत-से बाबू, हैट लगाए। गोरा रंग। बड़ी-बड़ी आँखें।

मीना—नाम? इकराम साहब तो नहीं। गोरा-सा। वही आने-वाला था।

श्यामा—हाँ, गोरे तो थे।

मीना—आँखों के नीचे कालापन था उनके?

श्यामा—भोला, बता कौन था? मैं तो बाबा के पास थी।

भोला—कुछ खाकी, कुछ हल्का नीला शूट था मेम शाब। बादामी रंग का बूता चरमर-चरमर। शिगार पी रहा था।

मीना—अरे मूर्ख, नाम नहीं बताया?

भोला—नाम नहीं जानता, मेम शाब। शाब से बात कर गिया। एक ठो प्याला चाय पी गिया। बहुत बात करता रहा।

श्यामा—मैं नौकरी नहीं करूँगी। मेरा हिसाब कर दीजिए, मेम साहब!

मीना—(चौंककर) क्यों, क्या बात है? क्यों नहीं करेगी नौकरी?

श्यामा—मैं दिन-दिन रात-रात बाबा को नहीं सँभाल सकती। आपको तो फुरसत ही नहीं है। बच्चे ऐसे नहीं रहते।

मीना—(चिल्लाकर) क्या कहा? तू मेरी मालकिन है, जो ऐसा कहती है? अच्छी आया माँ की तरह बच्चों को रखती है, पालती है, दूध पिलाती है। मिसेज़ इन्दुशा के दो बच्चों को एक आया पालती है।

श्यामा—लेकिन माँ भी तो रखती हैं, सरकार!

मीना—तो माँ भी रखती हैं। अब तक क्या तू ही पालती रही। जा, इनाम दूँगी। मुझे कुछ दिनों के लिए बाहर जाना है, और सुन भोला, मेरा सूटकेस निकाल दे और कुछ गरम कपड़े भी।

श्यामा—क्या अभी जा रही हैं?

मीना—रात की गाड़ी से। एक हफ्ते तक लौटूँगी। जल्दी कर खाना। खाना रहने दे। डिनर कहीं भी कर लूँगी।

भोला—चाय लाऊँ?

मीना—चाय मैं पीकर आ रही हूँ। अरे तू मेरा सूटकेस, सामान तैयार कर, भोला। (सीटी बजाती है।) क्या ले जाऊँगी, गरम कपड़े, शाल, चेस्टर, दस साड़ियाँ? क्या करूँ? हाँ, याद आया। मोतीलाल। ओह, माई लव। (ताली बजाकर) ठीक है! (जयन्त का प्रवेश) ओह, आ गए!

जयन्त—डाक्टर ने कहा है, बहुत होशियारी की जरूरत है। यह दवा दी है। बड़ी देर कर दी तुमने तो आज!

भोला—ये लीजिए सूटकेस।

मीना—रख दे। जरा साफ़ कर ऊपर से किसी कपड़े से। कैसे गधे हो तुम लोग।

भोला—अच्छा, मेम साब!

मीना—ला कपड़ा। कोई मैला कपड़ा उठा ला। हाँ, तो दवा दे दो। न हो, कुछ दिन की छुट्टी ले लो कालेज से।

जयन्त—पर यह हो क्या रहा है? कहीं जा रही हो क्या?

मीना—हाँ, जयन्त, जाना ही होगा।

जयन्त—कहाँ ?

मीना—मेरे अच्छे जयन्त, जा रही हूँ, अभी लौट आऊँगी। बस, अभी।

जयन्त—(गम्भीरता से) अभी यानी···

मीना—तीन-चार दिन तक। मुझे क्या नहीं मालूम है कि मेरा बच्चा बीमार है और तुम अकेले हो ?

जयन्त—तीन-चार दिन तक, पर बाबा·····

मीना—बाबा ? बाबा तुम्हारे पास रहेगा। तुम जो हो जयन्त, ज़रा देखभाल रखना। वक्त पर दूध दिलवा देना। दवा श्यामा देती रहेगी। कपड़े बदलती रहना श्यामा। हाँ, भला ! बात ही कितनी है ? क्या करूँ, मैं नहीं जाना चाहती थी, पर जाना पड़ रहा है। क्या करूँ ? बड़े आदमी हैं। दोस्ती है, तो निभाना तो होगा ही।

जयन्त—कौन बड़ा आदमी है, कहाँ जा रहा है ?

मीना—अरे वही, वही।

जयन्त—वही कौन ?

मीना—वही गुलाब मिल के मालिक की पत्नी सरला। वह भी साथ जा रही है। उसी ने कहा है। फर्स्ट क्लास की दो सीटें बुक करा ली गई हैं। वे तो कह रहे थे, हवाई-जहाज़ से चला जाय। पर हवाई-जहाज़ से हमें लखनऊ या देहली उतरना पड़ता। फिर वहाँ से जाते।

जयन्त—कहाँ ?

मीना—तुम तो बाल की खाल निकालते हो। अरे, अभी तक सूटकेस साफ़ नहीं हुआ ?

भोला—कापर नहीं मिला, मेम शाब। (कपड़ा ढूँढता है।) अभी शफा किया। बश मील गिया शाला कापर। ये शियामा की बच्ची कापर नहीं छोड़ती, खा जाती है या क्या। बाबा को शाप करने में हम बोलता मत छुओ। पर बोलता-बालता एकदम नाई। खराब करता है।

जयन्त—चुप रह भोला, बहुत मत बोल। ले, यह दवा रख दे। मालिश की भी है।

मीना—बस, अब आई, अब आई। गई और आई।

जयन्त—बुरा मत मानना, मीना, आखिर तुम जा कहाँ रही हो?

मीना—(चिल्लाकर) कह तो दिया, हज़ार बार, लाख बार कह दिया बाहर, बाहर, सुना तुमने? कान में रुई डाल ली है क्या?

जयन्त—(गम्भीरता से) बाहर कहाँ? मैं कहता था, बच्चा बीमार है। इधर परीक्षाएँ पास हैं। मुझे ओवर टाइम क्लास लेना ज़रूरी है। नहीं तो अभी मेरा प्रोबेशन पीरियड है। रिजल्ट अच्छा होना ही चाहिए, नहीं तो·····

मीना—(डाँटकर) तो मैं क्या करूँ, कहीं बाहर न जाऊँ? लोगों से मिलूँ-जुलूँ नहीं? क्या करूँ? मैंने तुम्हारे साथ शादी क्या की, जैसे तुम्हारी ज़िन्दगी का, तुम्हारे सुख-दुख का मैंने बीमा कर लिया है। तुमसे बँध गई हूँ।

जयन्त—मेरा मतलब था, बच्चा बीमार है, कल को कुछ हो-हवा जाय। तबीयत ही बिगड़ जाय। मैं अनाड़ी आदमी, बच्चे की देखभाल करना क्या जानूँ? न हो, कुछ दिन ठहर जाओ, फिर चली जाना।

मीना—मैं जानती हूँ, बाबा बीमार है। मैंने उसका प्रबन्ध कर दिया है। श्यामा अच्छी तरह उसकी देखभाल करेगी। आखिर मुझे भी तो वह प्यारा है। क्या मेरा बच्चा नहीं है, मैं नहीं चाहती उसे? अब तक क्या तुम्हीं ने उसे पाल-पोसकर बड़ा किया है? पर मजबूरी है, जाना पड़ रहा है, तो जा रही हूँ। मेरा चेस्टर ले आओ।

जयन्त—चेस्टर! क्या पहाड़ पर जा रही हो?

मीना—हाँ, मसूरी।

जयन्त—मसूरी! मसूरी तो बहुत दूर है। वहाँ से तीन-चार दिनों तक कैसे लौट सकोगी?

मीना—(कड़ी होकर) तो आठ दिन लग जायँगे ज्यादा-से-ज्यादा।

जयन्त—जाने-आने में ही आठ दिन चाहिएँ।

मीना—बस, गए और आए।

जयन्त—यह पहेली मेरी समझ में·····

मीना—न जाने तुमने कैसे एम० ए० पास कर लिया। कैसे लड़कों को पढ़ाते होगे!

जयन्त—फिर भी तुम समझा सकोगी, अच्छा होगा। बात यह है···

मीना—बात कुछ भी नहीं है। तुम मुझे जाने नहीं देना चाहते, किसी के साथ मिलने नहीं देना चाहते। तुम हमेशा से मेरे क्लब जाने का विरोध करते रहे हो। क्लब तुम्हें बदमाशी का घर मालूम होता है। गेम तुम्हें पसन्द नहीं है। मैं बॉल-रूम जाती हूँ तो तुम्हें वहाँ भी मेरा जाना, उसमें नाचना बुरा लगता है। मिस्टर जयन्त, बड़ा आदमी बनने के लिए बड़ों में बैठना-उठना जरूरी है। उनके साथ खाना-पीना, घूमना जरूरी है। आज मुझे लगता है, मैंने तुम्हारे साथ शादी करके·····खैर, जाने दो। मैं जा रही हूँ, कोशिश करूँगी जल्दी-से-जल्दी आ जाऊँ। (बच्चा रोता है।) यह लड़का भी कितना बदतमीज है। मैंने लड़के देखे हैं, आराम से चुपचाप पड़े रहते हैं, हँसते हैं, खेलते हैं और सो जाते हैं। रोता है, तो रोने दो, मैं क्या करूँ?

जयन्त—जरा गोद में ले लो न। तुम्हारे लिए ही तो सवेरे से चिल्ला रहा है।

मीना—चिल्लाने दो। इसकी तो आदत ही है। ला श्यामा, तो ले ही लूँ फिर। ला, अरे भोला, तब तक ओवल्टीन डालकर एक प्याला दूध ले आ। चाय मैं नहीं लूँगी।

श्यामा—(रोते हुए बच्चे को लाकर) लीजिए।

मीना—(व्यंग्य से) कह दिया, लीजिए। और पेशाब वगैरह कर दिया, तो नई साड़ी है, चार सौ की।

जयन्त—यह नई साड़ी कहाँ से आई?

मीना—जैसे तुम्हीं ने लाकर दी हो। कभी इतना भी नहीं हुआ कि

एक धोती ही लाते। मैं न करूँ, तो·····

जयन्त—मेरी इतनी बिसात कहाँ है कि मैं चार सौ की साड़ी खरीदूँ मीना, मैं ठहरा कालेज का एक मामूली लेक्चरर। साढ़े तीन सौ तो तनख़ाह ही पाता हूँ। फिर भी क्या सरला ने·····

मीना—हाँ, सरला ने ही तो। ले श्यामा, ले जा। अब चुप हो गया। (बच्चे को लेकर फिर दे देती है।)

श्यामा—लाइए। (लेती है।)

जयन्त—मुझे खेद है, मैं तुम्हारी कोई इच्छा पूरी नहीं कर सकता। पर·····(खट-खट की आवाज़) देख भोला, कौन है। आइए, अन्दर आ जाइए। कहिए!

नया आदमी—मीनादेवी से मिलना था।

जयन्त—यही हैं मीनादेवी। तुम बात करो, मैं देखूँ, दवा का समय हो गया है।

मीना—ले आए?

नया आदमी—तीस साड़ियाँ हैं। साहब ने कहा है, मेरी तरफ से प्रार्थना करना कि जो और जितनी पसन्द हों, ले लें। ये रुपये भी भेजे हैं।

मीना—पाँच नोट हैं सौ-सौ के। ठीक हैं। साड़ियाँ मेरे पास थीं भी नहीं। क्या सरला भी ले रही है?

नया आदमी—मुझे तो केवल आपके पास भेजा है।

मीना—(धीरे से) देखो, हमारे साहब को न मालूम हो।

(जयन्त का आना)

जयन्त—क्या है यह? ये साड़ियाँ!

मीना—सरला ने भेजी हैं। कहा है, खरीद लो जितनी चाहो। रुपये फिर दे दिए जायँगे। अच्छा, ये आठ रख दो। मैं चुन लूँगी। क्या करूँ, वह मानती ही नहीं, सिर हो जाती है। मैं कहती हूँ, अरी मुझे क्या करना, हम ग़रीब आदमी हैं, तो कहती है, हम भी तो ग़रीब हैं। जो है, सो तेरा ही तो है। बड़ी अच्छी है बेचारी। मेरा तो बड़ा खयाल रखती है। मेरे

बिना पानी नहीं पिएगी। वही तो मुझे ले जा रही है। अब ये साड़ियाँ भेज दीं। क्या करूँ, नहीं लेती, तो वैसे मुश्किल! अच्छा, तुम जाओ, कह देना, तू नहीं मानती तो रख लेती हूँ। पर रुपये लेने पड़ेंगे। मैं यों किसी का उधार नहीं रखूँगी। अच्छा!

नया आदमी—नमस्ते।

मीना—नमस्ते। (**जयन्त का प्रवेश**)

जयन्त—दवा दे आया हूँ। सो रहा है।

मीना—मैं कहती नहीं हूँ, ठीक हो जायगा। ऐसी चिन्ता की क्या बात है? और सच तो यह है, मैं तो फेमिली प्लेनिंग के पक्ष में हूँ। मुझे नहीं चाहिए यह चिल-पिल तुम्हारी। हाँ नहीं तो, अरे, तुम चुप हो, गम्भीर हो गए। क्या बात है? तुम चिन्ता मत करो। मैं रेस से जीतकर सरला का रुपया चुका दूँगी। भला, मैं क्यों किसी का पैसा रखूँ। वह दिन दूर नहीं है, जब मैं खुद घोड़े रखूँगी और रेस में दौड़ाऊँगी। इधर मेरा खयाल है, ब्यूटी-कन्टेस्ट में भी मैं चुन ली जाऊँगी। मैंने तुम्हें बताया नहीं कि एसोसिएशन वाले मेरे पीछे पड़ रहे हैं। तुम चुप हो। तुम तो जानते हो कि·····अरे क्या बात है? बोलो न!

जयन्त—(**गम्भीरता से**) क्या बोलूँ? क्या कहूँ मीना?

मीना—कहो, कुछ तो कहो। मैंने कहा न, मैं जल्दी आ जाऊँगी। ज्यादा दिन नहीं लगेंगे। ज्यादा-से-ज्यादा पन्द्रह दिन या बीस दिन। बस, हद है, इससे आगे नहीं। फिर जब उसने साड़ियाँ भेजी हैं मेरा मन रखने के लिए, तो यह भी तो नहीं हो सकता।

जयन्त—मैं सोचता हूँ, यह क्या हो रहा है? क्या यह गृहस्थी है? मैंने बड़ी भूल की कि तुम्हें इतना आगे बढ़ने दिया।

मीना—(**तपाक से**) क्या मतलब तुम्हारा? तो तुम सोचते हो, मैं बिगड़ गई हूँ, बदमाश हो गई हूँ?

जयन्त—मैं यह सब नहीं कहता। लेकिन मैं यह कहता हूँ, क्या यह हमारा घर है, क्या यह हमारा जीवन है?

मीना—और जीवन किसे कहते हैं ? क्या घर में पिसते रहना जिन्दगी है ? सुनो जयन्त, आज नारी का दृष्टिकोण बदल गया है। वह शादी को अब एक कन्ट्रैक्ट मानती है, जब तक भी निभे।

जयन्त—शायद तुमने अनुभव नहीं किया कि कन्ट्रैक्ट में व्यावहारिकता है, हार्दिकता नहीं; शरीर है, प्राण नहीं। व्यावसायिकता, बिजनेस है।

मीना—जो भी है, वह साफ़ है। वह तुम्हारे दर्शन फिलासफी से बँधा हुआ नहीं है। यदि तुम मेरे पति हो, तो मैं तुम्हें अपना सब कुछ नहीं दे सकती। मेरी इच्छाएँ हैं, मेरा शौक है। मैं मजबूर नहीं हूँ कि एक ही दुकान से हमेशा सौदा खरीदती रहूँ। तुमने मेरे मन को ही ठेस नहीं पहुँचाई, मेरे शरीर को भी अपरूप कर दिया है। मेरी इच्छाओं को भी कुचल डाला है।

जयन्त—क्या तुम हृदय से यह सब कहती हो ? मेरा निश्चय है, जोश में मनुष्य समझ खो बैठता है।

मीना—(चिल्लाकर) हाँ, मैं पागल हूँ ! मेरा दिमाग़ फिर गया है !

जयन्त—(गम्भीरता से) यह मैं कब कह रहा हूँ ? मनुष्य की तृष्णा की सीमा नहीं है मीना, जो हम चाहते हैं, वह सब हमें कहाँ मिलता है ? तो क्या हम उसके लिए·····

मीना—चुप रहो। मैं तुमसे उपदेश नहीं सुनना चाहती। मैं जो चाहूँगी, करूँगी।

जयन्त—तो क्या तुम इसमें सुखी हो ? मेरा विचार है, सुख हमारे भीतर है, बाहर नहीं।

मीना—तुम सुखी न होगे, मैं तो हूँ।

जयन्त—तुम भी नहीं हो। जिसको तुम सुख मानती हो, वह छलना है, भ्रम है। वह असलियत नहीं है। यह हमारे देश की बात नहीं है; हमारी गृहस्थी का रूप नहीं है।

मीना—सुनो जयन्त, मैं इतना आगे बढ़कर अब पीछे नहीं हट

सकती। मैं घर में बँधकर नहीं रह सकती। मैं चूल्हा नहीं फूँक सकती। मैं बच्चे नहीं पाल सकती। यह स्वतन्त्रता का युग है—नारी की स्वतन्त्रता का।

जयन्त—लेकिन मैं कहता हूँ, यह स्वतन्त्रता नहीं है।

मीना—मैं कहती हूँ, यही स्वतन्त्रता है। आज की नारी को तुम रोककर नहीं रख सकते। भोला, ला मेरी साड़ियाँ और ये कपड़े ले आ। मैं रख लूँ। देर हो रही है। सरला की कार आती ही होगी।

भोला—बिष्टर मेम शाब, बिष्टर ?

मीना—बिस्तर रहने दे। मिल जायगा। ये शाल ला। और देख, अटैची में ये सारा सामान रख दे। तौलिए भी। और देख, ये पैकेट उठा ला। ला जल्दी। (मोटर की आवाज़, दरवाज़े पर खट-खट, बच्चा रोता है) कौन, कौन है, देख तो भोला !

भोला—एक शाब आया है।

साहब—हलो मीना, कितनी देर है ? वी मस्ट हरी अप।

मीना—आई एम रेडी। भोला, यह सामान बाहर गाड़ी में रख दे।

भोला—जी मेम शाब। (बेबी रोता है।)

मीना—माई हसबैंड प्रोफ़ेसर जयन्त। और ये हैं गुलाब मिल के स्वामी मि० मोतीलाल। श्यामा, चुप कराओ बेबी को।

साहब—ओह, बड़ी खुशी हुई मिलकर।

जयन्त—निश्चय ही ऐसा मौक़ा कहाँ मिल सकता है ?

साहब—(व्यंग्य से) यानी ?

मीना—मैं असबाब रखवाती हूँ मि० मोतीलाल। अच्छा जयन्त, मैं जल्दी लौटूँगी। बाबा का खयाल रखना। हाँ श्यामा, तू भी। (बच्चा रोने लगता है।)

श्यामा—उसे एक बार प्यार तो कर लीजिए।

मीना—आकर, आकर श्यामा। चीरियो जयन्त !

साहब—(जाते-जाते आवाज़ आती है) जल्दी ही लौटेंगे, प्रोफ़ेसर

जयन्त।

जयन्त—(अपने में) हाँ-हाँ, रूप की मित्रता देर तक नहीं रहती, मोतीलाल। लौटना तो होगा ही।

(मोटर का दरवाज़ा बन्द होने और कार स्टार्ट होने की आवाज़ आती है।)

श्यामा—बाबा की हालत खराब हो रही है साहब! देखिए न, आँखें फेर रहा है।

जयन्त—मेरी हालत भी कौन अच्छी है श्यामा! वह जल्दी लौटने के लिए गई है, यह जल्दी न लौटने के लिए जा रहा है और मैं लौट भी चुका हूँ श्यामा! यह स्वतन्त्रता का युग है न, श्यामा, स्वतन्त्रता का युग!

श्यामा—दूध, औलाद और स्त्री को बिगड़ते देर नहीं लगती बाबूजी!

जयन्त—कितना बड़ा सत्य कह दिया तूने, श्यामा! स्वतन्त्रता और उच्छृंखलता की हद कौन खींच सका है? श्यामा, मीना की स्वतन्त्रता···। उच्छृंखलता हो गई है। चलो, मैं बाबा को देखता हूँ। वह जा रहा है, शायद हमेशा के लिए जा रहा है। ओह!

श्यामा—हाँ, जल्दी चलिए।

मायोपिया

: पात्र :

चंडीप्रसाद	रिटायर्ड तहसीलदार
श्यामसुन्दर	बड़ा लड़का
तारक	अतिथि
केशव	श्यामसुन्दर का मित्र
सुधी	चंडीप्रसाद की लड़की प्रोफेसर
चन्द्रिका	सुधी की शिष्या
मधु	श्यामसुन्दर की पत्नी
अनामा	तारक की पत्नी

दीनू : नौकर; बालक : आठ वर्ष की उमर।

[एक कमरे का दृश्य। साधारणतया सजा हुआ। कमरे में सोफा-सेट, कुछ कुर्सियाँ, दीवारों पर तसवीरें। कमरे के साथ पूर्व की ओर एक दरवाजा सुधी के कमरे में जाता है। बिलकुल उसके सामने पश्चिम की तरफ का दरवाजा मधु के कमरे में। समय : शाम के साढ़े पाँच।]

चन्द्रिका—मैंने अभी कोई निश्चय नहीं किया, उत्तर देने की आवश्यकता न होने पर भी मैं आपकी सलाह चाहती हूँ।

सुधी—विवाह मनुष्य की व्यक्तिगत रुचि-अरुचि का प्रश्न है चन्द्रिका! मैं तुम्हें सलाह भी क्या दे सकती हूँ?

चन्द्रिका—यदि मैं यह मानूँ, कि आपकी सलाह ही मेरी रुचि है.....।

सुधी—मैं इतना बड़ा भार अपने ऊपर नहीं ले सकती। तुम्हें इस

मामले पर स्वयं विचार करना चाहिए।

चन्द्रिका—यदि मैं कोई फैसला न कर पाऊँ प्रोफेसर ?

सुधी—तो मेरा मत तो स्पष्ट है, मैं विवाह को आवश्यक नहीं मानती। मुझे दिखाई देता है, यह जीवन बन्धन के लिए नहीं है।

चन्द्रिका—किन्तु क्षमा कीजिए, बिना बन्धन के मनुष्य समाज में रह नहीं सकता। सबसे बड़ा बन्धन तो समाज ही है—फिर, जिन परिस्थितियों में हम रहते हैं क्या वे स्वयं एक बन्धन नहीं हैं ?

सुधी—समाज को हानि न पहुँचाकर जो एक प्रकार की व्यक्तिगत आज़ादी मिलती है मेरा संकेत उसी ओर है चन्द्रिका ! मैं विवाह को व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य के भीतर मानती हूँ। मेरे विवाह न करने से किसी का कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। फिर मैं अपनी स्वतन्त्रता क्यों खोऊँ ?

चन्द्रिका—तो क्या, आप मानती हैं कि बिना विवाह के नारी अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा कर सकती है ?

सुधी—क्यों नहीं। विवाह मानसिक कमजोरी है जिसके सामने नारी अपने को अर्पण कर देती है। यदि कोई उस पर विजय पा सके तो···खैर जाने दो, तुम्हारा क्या निश्चय है ?

चन्द्रिका—यही कि, मुझे (झिझककर)·····

सुधी—बोलो, निःसंकोच होकर बोलो, इसमें लाज की क्या बात है, वैसे तुम जानती हो मैं इसे पसन्द नहीं करती। तुम्हें शायद नहीं मालूम अपनी इस स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए मुझे कितना युद्ध और कितना संघर्ष करना पड़ा है। इन आठ सालों में मैं जरा भी यह अनुभव नहीं कर पाई कि मैंने विवाह न करके कोई भूल की है और इसीलिए मैंने अध्यापिका का काम स्वीकार किया है। फिर भी यह व्यक्ति का प्रश्न है। मधु को ही देखो, किसी समय हम दोनों का विचार एक ही था, लेकिन उसने भाई साहब से विवाह कर लिया।

चन्द्रिका—तो क्या वे सुखी हैं ?

सुधी—यह तो वे ही जानें। अब तो इस विषय पर बात करना भी वे

शायद पसन्द नहीं करतीं।

चन्द्रिका—हो सकता है, सुखी हों।

सुधी—हो सकता है न भी हों। (इसी समय श्यामसुन्दर का लड़का तिक-तिक करता हुआ आता है।) भई मैं इस लड़के के मारे परेशान हूँ।

लड़का—चल-चल-चल, चल बे घोड़े चल, बुआ, देखा मेरा घोड़ा कैसा दौड़ता है? (तिक-तिक करके चारों तरफ चक्कर काटता है।) बाबूजी कल ही लाये हैं, देखा बुआ, देखा!

(छोटी मेज़ का गमला गिरता है।)

सुधी—(चिढ़कर) मुन्नू, जाओ बाहर जाओ, जाओ! (क्रोध से) सारा कालीन खराब कर दिया। जाओ, अरे दीनू, गमला तोड़ दिया, (धकेलती हुई) चलो नालायक कहीं के, जाओ बाहर खेलो, सचमुच इन बच्चों से मुझे घृणा है, दीनू ओ दीनू! (दीनू नौकर आता है।)

दीनू—जी सरकार!

सुधी—जी सरकार, जी सरकार, देखता नहीं है इसने गमला गिरा दिया, ले जाओ इसे बाहर। तुम्हें इतनी तमीज़ नहीं है, सारा कालीन खराब कर दिया इसने। फूलों का गमला गिरा दिया, ले जाओ इसे, अन्दर मत आने दिया करो।

दीनू—बहुत अच्छा, चलो भैया चलो, चलो चलो। (बच्चा रोता है)

सुधी—क्या मुसीबत है! इन बच्चों को इतनी तमीज़ भी नहीं सिखाई गई कि (मुंह बिगाड़ जाता है।) इसीलिए मुझे बच्चों से घृणा है।

(बच्चा बैठक के बाहर निकलकर रोता है। मधु की आवाज़ सुनाई देती है—"क्यों रो रहे हो मुन्नू, इधर आओ, आओ, दीनू क्या हुआ रे?")

चन्द्रिका—जाने दीजिए, बच्चा है।

सुधी—बच्चा है तो क्या सर पर चढ़ जायगा! असल में बाबूजी ने इसकी आदत खराब कर दी है, लाड़ लड़ाकर।

चन्द्रिका—मानसिक अशान्ति तो हो ही जाती है।

सुधी—(चुप, श्यामसुन्दर का प्रवेश)

श्यामसुन्दर—अरे! (चौंककर) तुम हो सुधी! तुम भी चन्द्रिका! मैं···मैं इसलिए आया था कि आज तारक अपनी नवविवाहिता पत्नी के साथ घर पर आ रहा है। मैंने उसे छः बजे चाय पर बुलाया है। तुम कहीं बाहर तो नहीं जा रहीं? नहीं, तुम तो होगी ही। चन्द्रिका, तुम भी रहना, वह मेरा पुराना दोस्त है, कलकत्ते से कल ही लौटा है। शायद दो-चार दिन रहे, मैं दीनू को बाज़ार भेजता हूँ, कुछ मिठाई ले आएगा। बाबूजी कहाँ हैं?

सुधी—(खड़ी होकर) शायद शान्ति बाबू के यहाँ शतरंज खेल रहे होंगे। बुलाऊँ क्या? (बैठ जाती है।)

श्याम—हाँ, बाबू जी भी शायद उससे मिलना पसन्द करेंगे। वह अब बहुत बड़ा आदमी हो गया है, इस समय वह अमरीकन कार्बन कम्पनी का मैनेजर है। पन्द्रहसौ मासिक तो उसे वेतन ही मिलता है, एक कार भी है उसकी डिस्पोज़ल पर। नौकर-चाकर, कोठी अलग। दफ्तर में मेरे साहब से मिलने आया था। मुझसे भी तपाक से मिला। अभिमान तो उसे छू तक नहीं गया। तुम्हारी बाबत पूछ रहा था। मैंने कह दिया सुधी यहीं इंटर-कालेज में लैक्चरर हैं। बस, और क्या कहता? सचमुच बड़ी गलती हुई। खैर जाने दो; अच्छा, तुम बैठो, बैठने का इन्तज़ाम यहीं करना, मैं जाता हूँ, कपड़े बदलूँ। (चला जाता है। उसकी आवाज़ आती रहती है। बच्चे के रोने का स्वर।)

सुधी—(अपने-आप) आखिर मैं क्या करूँ? यदि तारक कार्बन कम्पनी में पन्द्रहसौ का नौकर है तो रहे। क्या इतने से वह बड़ा आदमी हो गया। स्टुपिड, न जाने इन पुरुषों को क्या हो गया है, जैसे औरतें आदमियों की चटक पर फिसली पड़ती हैं। एक साँस में सब बातें कह गए। मैं नहीं चाहती कि तारक के आने पर मैं यहाँ रहूँ। फिर, पन्द्रहसौ नौकर हो गया है तारक···होगा···मुझे क्या···मुझे क्या?

चन्द्रिका—अच्छा प्रोफेसर, मैं चलूँ। आज्ञा दीजिए।

सुधी—(टहलती हुई) इन पुरुषों से मुझे घृणा है, यह वही तारक है,···जाने दो। अच्छा, तो क्या तुम जा रही हो? पर सुनो, यह आवश्यक नहीं है कि विवाह किया ही जाय। कालेज में ऐसी कई साथिनें हैं जिन्होंने मेरे जैसी प्रतिज्ञा की है।

चन्द्रिका—पर प्रतिज्ञा तो कटुता है न, या उसे कटुता से उत्पन्न प्रतिक्रिया कहिए। प्रतिज्ञा अपने में स्वाभाविक तो नहीं है।

सुधी—(बैठकर) क्यों, स्वाभाविक क्यों नहीं? प्रतिज्ञा तो मनुष्य की दृढ़ता का चिह्न है न। वह तो आत्मा का फोर्स है, विकारों से लड़ने के लिए। मैं तुम्हें मजबूर नहीं करती चन्द्रिका। किन्तु आज का युग यही चाहता है।

चन्द्रिका—(कुछ रूखेपन से) तो क्या आज का युग विद्रोह करने को कहता है? जीवन में विद्रोह, स्वाभाविकता से विद्रोह! सुनिए प्रोफेसर, मैं तो आपसे इस सम्बन्ध में परामर्श लेने आई थी कि मुझे अभी शादी करनी चाहिए या ठहरकर।

सुधी—(व्यंग्य से) ओह, तो यों कहो, मेरी परीक्षा लेने आई थीं। तुम्हारे जी में जो आवे सो करो, मुझे क्या! (एक ओर चलने लगती है।)

चन्द्रिका—(उठती हुई)····आप तो नाराज हो गईं।

(श्यामसुन्दर का प्रवेश)

श्यामसुन्दर—अरे, तुम लोग अभी बैठी ही हो, चलो यह ठीक ही हुआ। (हाथ की घड़ी देखकर) अरे, समय हो रहा है, मिठाई के लिए मैंने दीनू को भेज दिया है, आता ही होगा। न हो तुम भी तैयार हो लो, तुम भी चन्द्रिका। मधु कुछ नमकीन तैयार कर रही है। चाय बाद में होगी, यह काम दीनू का है।

(मधु का प्रवेश)

मधु—सुधी जीजी, जरा भई हमारी सहायता करो। तुम इसी कमरे

में बैठने का इन्तजाम कर लो। अरे चन्द्रिका तुम भी हो ? अब ठीक रहेगा, (पति से) आप जाइए, कपड़े बदल लीजिए, ऐसे कैसे बैठेंगे ? मुझे भी साड़ी बदलनी है। न जाने श्रीमती तारक कैसे कपड़े पहनकर आवे। तुम भी तैयार हो जाओ। मुन्नू के भी कपड़े बदलने हैं। जल्दी करो, वे लोग आते ही होंगे।

सुधी—मुझे कुछ भी बदलना-अदलना नहीं है। वैसे मुझे काम था एक।

मधु—अरे, तो क्या अब तुम बाहर जाओगी ? ऐसा नहीं होना चाहिए। सुन रहे हो, सुधी जीजी बाहर जा रही हैं।

श्याम—बाहर, बाहर क्यों, बाहर जाना क्या ठीक है ?

(इसी बीच में मुन्नू घोड़े पर चढ़ा हुआ आता है।)

मुन्नू—बाबूजी, हमारा घोड़ा चलाइए, बाबूजी घोड़ा चलाइए न ?

श्याम—लाओ बेटा, लाओ।

मधु—(पति से) तो तुम्हें तो कुछ करना-धरना है नहीं ! लाओ मुझे दो मुन्नू को। मैं इसके कपड़े बदलूँगी। चलो मुन्नू, चलो तो सही। बड़ा राजा बेटा है। जाइए आप···(पति चला जाता है। दीनू कुर्सी-मेज ठीक करता है, सुधी अपने कमरे में जाती है।)

दीनू—(गुनगुनाता हुआ)

टूट टाट घर टपकत खटियो टूट···

टूट टाट घर टपकत खटियो, पिय की बाँह···

सुधी—(कमरे से निकलकर) ओ दीनू के बच्चे, क्या बक रहा है ?

दीनू—(घबराकर) कुछ भी तो नहीं बीबीजी, कुछ भी तो नहीं, ओह, गलती हो गई, अब नहीं गाऊँगा।

(चंडीप्रसाद का प्रवेश)

चंडीप्रसाद—ओ सुधी बेटा, कोई पार्टी-वार्टी है क्या ?

सुधी—हाँ बाबू जी, भैया ने तारक बाबू को चाय पर बुलाया है।

चंडीप्रसाद—उसी की तैयारी है यह ? क्या कहा तारक ? वह कब

आया ?

सुधी—मुझे नहीं मालूम, भैया जानें, आपको चाय में बैठने के लिए भैया कह रहे थे।

चंडीप्रसाद—नहीं, मैं बैठकर क्या करूँगा, मुझे अभी शान्ति बाबू के यहाँ जाना है। आज दो मात खाकर आया हूँ, उसी का बदला चुकाना होगा। और भी कई खिलाड़ी आ रहे हैं। आज फैसला होकर रहेगा। क्या समझा है शान्ति ने, वह मात दूँगा कि वह भी याद करे।

सुधी—वह तो खेल है बाबूजी, सत्य तो नहीं।

चण्डीप्रसाद—जीवन ही खेल है सुधी, हर खेल को सत्य समझकर ही खेलना वास्तविकता है। मैं तारक से मिलूँगा सुधी, तारक को देखना चाहता हूँ।

सुधी—उन्होंने विवाह भी कर लिया है, वे सपत्नीक आ रहे हैं, पन्द्रहसौ तो वेतन है।

चण्डीप्रसाद—(जैसे पहाड़ गिर पड़ा हो) तू क्या कह रही है ? (काउच पर बैठकर) सुधी, बैठ बेटा, मेरे पास बैठ।

सुधी—बाबूजी, चन्द्रिका कमरे में मेरी प्रतीक्षा कर रही है। क्यों कोई खास बात है क्या ?

चण्डीप्रसाद—नहीं, अच्छा, हाँ तू जा, मैं बैठा हूँ। (जाती है) हूँ···तारक आ रहा है, तारक पन्द्रहसौ की नौकरी। ओह, कितनी स्मृतियाँ गुँथी हुई हैं इस तारक के साथ। कितना अच्छा होता, किन्तु सुधी ने··· लड़की जिद्दिन है···न जाने क्या करना चाहती है ? मैं तो इसके मारे परेशान हूँ, परेशान। कुछ भी तो समझ में नहीं आता। आजकल की लड़कियाँ···(दरवाजा खटखटाने की आवाज) अरे दीनू, देखियो कौन है बाहर। ओह, तारक बेटा, तारक, आओ, आओ अन्दर आ जाओ। (हँसकर) अभी-अभी सुधी ने बताया तुम आ रहे हो। कहो बेटा, खुश तो रहे, बड़े दिनों बाद देखा, ये ओह·····।

तारक—ये···(दोनों हाथ जोड़कर) प्रणाम करता हूँ, ये अनाना।

चंडीप्रसाद—(भीतर ही सुनकर बाहर से खुशी) ओह समझा, आओ बेटा, खुश रहो, आनन्द रहो, बैठो, अरे दीनू, सुधी, देख तो ये तारक बाबू आए हैं। पर न जाने कहाँ चली गईं ? अभी तो यहीं थी और मैं तो तुम जानो अब रिटायर्ड हूँ। बड़े ठाट से तहसीलदारी की। किसी से भी नहीं दबा। पर एक बात है, काम करने में किसी से पीछे नहीं रहा। जब दौरे पर जाता तो रात-रात-भर बैठकर काम करता कि कोई क्या करेगा। वाल्टन साहब मार्च १६१६ में एक बार कलैक्टर होकर आये, तो थर-थर काँपने लगे सब लोग। बड़ा सख्त अफसर था तारक, क्या कहने थे उसके। हर समय आँखें चढ़ीं, त्यौरियाँ टेढ़ीं, मानो खा जायगा। अरे हाँ, सुधी, ओ सुधी, देख तो तारक बाबू आये हैं।

सुधी—(पीछे से) आई बाबू जी, आगे आकर···नमस्ते।

तारक—नमस्ते, आज श्याम बाबू मिल गए।

सुधी—जी (चन्द्रिका आती है) आओ चन्द्रिका, बैठो, मैया को बुलाती हूँ।

तारक—ये अनामा·····

अनामा—नमस्ते, बहुत दिनों से आपका नाम सुनती आ रही हूँ, आज दर्शनों का·····

चंडीप्रसाद—तुम बैठो बेटा, मैं श्याम को भेजूँ, बात यह है मैं तो रिटायर्ड आदमी हूँ। आज शान्ति बाबू के यहाँ शतरंज की दो मातें खाकर आया हूँ। तभी से जी तिलमिला रहा है। तहसीलदार रहा हूँ, पर दबा किसी से भी नहीं, ठाट से तहसीलदारी की है। एक बार की बात है, बात क्या है, सही है, आज भी वह सब मुझे ऐसे दिखाई देता है, जैसे कल की ही बात हो, हाँ, तो क्या कह रहा था मैं,···मैं कह रहा था २४ सितम्बर १६२५ को हमारी तहसील में एक बार ज्वायंट मजिस्ट्रेट मुआयना करने आये। बड़ी तैयारियाँ थीं, पार्टी-दावतों के मारे वे खुश हो गए। बोले, मिस्टर चंडी-प्रसाद, तुम्हारा काम देखकर हम खुश हुआ। मैंने कहा साहब, देख लीजिए, एक भी फाइल पैंडिंग में नहीं है, सब काम अपटूडेट है।

(श्याम का प्रवेश)

श्याम—हलो तारक भाई, आ गए।

तारक—(चंडीप्रसाद से बातें करता हुआ) जी, आओ भाई श्याम बैठो, सीधा चला आ रहा हूँ। केवल इनके आने में ही जो देर लगी, वही लगी और तुम जानते हो···

चंडीप्रसाद—अच्छा तारक तुम बैठो, चाय-वाय पियो, मैं आया, मात खाकर आया हूँ तो···। बैठो तुम···

तारक—आप भी बैठिए न बाबूजी।

श्याम—अभी आते हैं, (धीरे से)···जाने भी दो,

(मधु आती है।)

श्याम—आओ मधु, देखो ये हैं मिस्टर तारकनाथ !

तारक—और ये अनामा।

(नमस्ते के बाद दोनों बैठते हैं।)

मधु—आपके सम्बन्ध में बहुत दिनों से सुनती आ रही हूँ।

अनामा—यह आपका सौजन्य है मधु बहन !

मधु—बैठिए, बैठिए न जीजी, आप भी बैठिए न, कितना मूर्ख है यह दीनू, ठीक तरह से बैठने का इन्तजाम भी तो नहीं कर गया, मैं उधर काम में लगी रही। दीनू ओ दीनू !

श्याम—सुधी, तुम चीजें लाओ, मैं कुरसी उठा लाता हूँ। (उठाकर) लो बैठो, इधर आ जाओ।

मधु—यह मेज जरा इधर सरका दो, क्षमा कीजिए। (देखकर) हाँ, अब ठीक हो गया।

अनामा—आप बड़ी चतुर हैं, मधु बहन !

तारक—स्त्रियों को चतुरता सीखने कहीं जाना नहीं पड़ता अनामा, यह तो इनका स्वाभाविक गुण है।

सुधी—दो-चार चिकने-चुपड़े वाक्य कहकर स्त्रियों को रिझाने वाले पुरुषों से भी अधिक क्या ?

श्याम—(तारक की पीठ पर हाथ मारकर) अरे चाय-वाय लाओ न, हाँ भाई तारक, सुनाओ क्या हाल-चाल हैं ?

तारक—पुरुषों की तरफ से वकालत करने के पहले ही तारक नतशिर है सुधी !

सुधी—इस नम्रता का व्यंग्य समझने के लिए तारक बाबू !

श्याम—अरे छोड़ो इस चक्कर को कुछ और बात करो।

सुधी—तारक बाबू, क्या आप नहीं मानते कि पुरुष का तर्क एक टाँग से दौड़ते-दौड़ते अब थक गया है।

तारक—मैं नहीं मानता कि उसे स्त्री की बैसाखी कभी मिली ही नहीं·····(चाय पीता है।)

सुधी—इससे आपने यह स्वीकार कर लिया कि बैसाखी की तरह नारी जड़ है। बस, इसी पर मुझे आपत्ति है।

अनामा—मैं मानती हूँ कि पंगु पुरुष के लिए बैसाखी की तरह नारी का भी अपना महत्त्व है। क्या आप नहीं मानतीं कि दो साँसों में जीवन है, जब कि लीकेज होने पर ट्यूब में से हवा मृत्यु की तरह केवल बाहर निकलनी ही जानती है, निश्चय ही एक का महत्त्व दो से है।

सुधी—दुख का प्रवाह भी दो से बहता है, संसार की नारकीयता का मूल स्रोत भी दम्पति के जीवन से ही प्रारम्भ हुआ है।

अनामा—किन्तु अनन्त सुख का स्रोत भी यहीं फूटा है, सुधी बहन ?

मधु—हमें विश्वास करना चाहिए कि पुरुष को हमने बनाया है।

श्याम—हियर हियर, आज न मानने पर भी मानना होगा कि यदि शतरूपा न होती तो स्वयंभुव मनु या तो ठूंठ होते या पत्थर।

तारक—उस आदिम स्त्री का नाम जो शतरूपा रखा गया वह इसीलिए कि वह अपने में एक होते हुए भी माता, बहन, स्त्री के रूप में अनन्त थी। मैं उसे प्रणाम करता हूँ सुधी जी, आप सब शतरूपा हैं।

श्याम—अरे, छोड़ो इस दार्शनिकता को, हाँ यह तो बताओ क्या हाल है तुम्हारा तारक बाबू ! (चाय पीता है।)

तारक—(खाते हुए) इस रसगुल्ले की तरह हम दोनों का जीवन बीत रहा है।

मधु—यही जीवन की सार्थकता है तारक बाबू!

तारक—मुझे ऐसा दिखाई देता है कि हम भारतीयों के जीवन में दार्शनिकता का अनुचित प्रवेश हो गया है। जब से हम समय-कुसमय चिन्तन को महत्त्व देने लगे हैं तभी से हमारा जीवन-रस सूख गया है, श्याम बाबू। क्या कारण है हमारे यहाँ हास्य नहीं है, हम जैसे हँसना नहीं जानते। जहाँ दो-चार आदमी बैठे वहाँ हम गम्भीर विषय ले बैठते हैं जैसे सारे संसार का भार हमारे ऊपर ही आ गया है।

श्याम—दुख में हँसना जीवन का चिह्न है। यही तो मैं इनसे कहता हूँ, तुम दुख को जितना मानोगे उतना ही वह तुम्हारे ऊपर सवार होगा।

तारक—विवाह के बाद एक वर्ष तक मैं बेकार रहा, किन्तु उस बेकारी की दशा में जिसने मुझे जीवित तथा स्वस्थ रक्खा, ज़रा भी माथे पर शिकन न पड़ने दी वह···

अनामा—बस, बस, रहने दो, प्रशंसा करने लगोगे तो पुल बाँध दोगे।

तारक—चोर की दाढ़ी में तिनका। तो क्या तुम समझती हो कि मैं तुम्हारा नाम ले रहा था? वैसे आजकल बाढ़ों के जमाने में पुल बाँधना जरूरी भी हो गया है।

अनामा—ज़रा अपने मन से पूछो।

तारक—अब हम दोनों तीन मास बाद अमरीका जा रहे हैं। साहब ने मुझसे कहा, तो मैंने केवल इसी शर्त पर जाना स्वीकार किया कि अनामा भी साथ चलेगी।

अनामा—यदि एक-दूसरे का हार्दिक सहयोग हो तो जीवन कभी विरस नहीं हो सकता, जीवन की यही सफलता है।

मधु—स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध निश्छल भाव से एक-दूसरे को देने के लिए है। जो-कुछ स्त्री के पास है यदि वह पुरुष को दे डाले, तो कोई कारण

नहीं कि पुरुष से वह उतना या उससे अधिक प्राप्त न कर सके। यही पाया भी है मैंने।

श्याम—अरे तारक, यह आइसक्रीम तो लो।

(तारक आइसक्रीम खाता है।)

श्याम—हमारा भी एक प्रोग्राम है, वह यह कि मैं दो मास की छुट्टी लेकर दक्षिण की यात्रा को जा रहा हूँ। हो सका तो हम लोग लंका तक जायँगे। मधु को चित्रकला का बहुत शौक है। मैंने निश्चय किया है कि इस यात्रा में इन्हें सभी प्रसिद्ध स्थान दिखा दूँ। ज़रा लाओ न मधु अपने वे चित्र तारक बाबू को दिखाओ। लो मैं ही लाता हूँ।

मधु—कुछ हों भी।

अनामा—दिखाइए न, हमें भी देखने का सौभाग्य दीजिए।

मधु—(उठते हुए) आप इनकी बातों में न आइए, अच्छा, जाती हूँ·····

श्याम—सचमुच पहली बार मधु के उन चित्रों को देखकर मैं अवाक् रह गया। मैंने निश्चय किया है इन्हें चित्रकला में उन्नति के लिए सब प्रकार की सुविधा दूँगा। अभी पिछले दिनों डेढ़ सौ में इसी सम्बन्ध का सामान खरीदा है।

मधु—(आते हुए)···देखिए, आप लोग मेरा मज़ाक न उड़ाइएगा।

श्याम—हनुमान को अपने बल का ज्ञान नहीं है तारक।

तारक—यदि अंगद रहे तो हनुमान को मालूम हो जायगा कि वे समुद्र पार कर सकते हैं।

मधु—यह ताजमहल है ?

श्याम—मुकाबला करो असली ताजमहल से। दीनू, वह सेल खड़ी वाला ताजमहल तो उठा ला। अच्छा रहने दो, वह क्या सामने रखा है।

अनामा—मधु, श्याम भाई ठीक कह रहे थे, सचमुच तुम्हारे चित्र बहुत सुन्दर हैं।

मधु—यह काश्मीर के कुछ चित्र हैं, जो मैंने पिछली यात्रा में

बनाए हैं।

तारक—ब्यूटीफुल, देखो अनामा क्या तुम नहीं मानतीं कि मधु बहन में कितनी प्रतिभा है।

अनामा—निश्चय ही, मेरा विश्वास है, यदि इन्हें समय और सुविधा मिले तो एक दिन ये महान् चित्रकार हो सकती हैं। वाह क्या सुन्दर हैं, सचमुच तुम्हारी कला असाधारण है बहन!

श्याम—मैं तो विश्वास करने लगा हूँ तारक, कि नारी में प्रत्येक प्रकार की कला का अस्तित्व निहित रहता है, केवल उसे उभरने देने की आवश्यकता है।

तारक—तुम ठीक कहते हो श्याम, नारी के द्वारा कला जितनी अच्छी विकसित हो सकती है, उतनी पुरुष के द्वारा नहीं।

सुधी—(जानी हुई) कितनी प्रतारणा है।

चन्द्रिका—किन्तु सभी महान् कवि पुरुष ही हुए हैं ऐसा क्यों?

तारक—इसलिए कि एक तो उन दिनों नारी को विकास करने का अवसर नहीं मिला, फिर मैं पूछता हूँ कालिदास ने किस का चित्रण करके अपने काव्य को महान् बनाया है? केवल नारी का या प्रकृति का ही तो। स्पष्ट है कला का उद्भव नारी में है। क्यों आज भी शेक्सपियर के पुरुष पात्रों की अपेक्षा स्त्री-पात्र महान् हैं? इसलिए कि शेक्सपियर ने स्त्रियों के हृदय में अगाध सौन्दर्य का भण्डार पाया।

श्याम—तुम्हारा कहना सत्य है तारक, साधारण शिक्षिता मीराबाई के पदों में जो स्नेह और प्रेम का अगाध सागर उमड़ता है क्या वह वैसे ही किसी पुरुष कवि में मिल सकता है? **(बाहर से एक आवाज़ आती है, "इससे तो अच्छा यह है श्याम कि आप स्त्रियों पर एक प्रशस्ति लिख डालें।" सब चौंकते हैं। फिर अट्टहास।)**

श्याम—कौन, अरे केशव, आओ तुम्हारी ही कसर थी।

केशव—(आते हुए) मैं आप लोगों से, विशेषकर देवियों से अपने

अपराध के लिए क्षमा माँगता हूँ, कि मैंने अनधिकार प्रवेश करके दुःसाहस का काम किया है। आपकी प्रशस्ति में विघ्न डाला। श्याम भाई, मैं भी चाय पिऊँगा, बाबूजी कहाँ गये? वे भी खूब हैं, खूब शतरंज खेलते हैं श्याम भाई, अभी दो गुण्डों को थाने में बन्द करके लौट रहा हूँ।

श्याम—क्या, कैसे? (सुधी आती है।)

केशव—वह हैं न अपने बंगालस्टोरवाले, उन्हीं की दूकान पर दो युवक पिस्तौल लेकर घुस गए, पचीस हजार नक़द छीनकर मोटर से भाग रहे थे। सब लोग ऐसे चुप थे जैसे साँप सूँघ गया हो। हो-हल्ला हो रहा था, पर दूर-दूर से। मैंने भी सुना तो पीछे से दौड़कर एक आदमी के इतनी ज़ोर से धौल जमाई कि वह तो वहीं गिर पड़ा। दूसरे ने पिस्तौल तानी किन्तु फायर चूक गया। उसे भी मैंने धर दबाया। बस, फिर क्या था सबने दौड़कर दोनों को पकड़ लिया। थाने ले गए, वहीं से चला आ रहा हूँ।

श्याम—यह पट्टी कैसी है, कुछ चोट तो नहीं आई?

केशव—हाँ, ज़रा-सी गोली की घिसट है। ऊँह। ठीक हो जायगी।

चन्द्रिका—किन्तु खून तो निकल रहा है। लाइए, मैं फिर से बाँध दूँ।

केशव—धन्यवाद। ठीक हो जायगा। श्याम, भाई चाय पिलाओ फिर मैं चलूँगा।

श्याम—अवश्य, दीनू, नई चाय तैयार कर लाओ। यह तो ठण्डी हो गई है। यह है पुरुष का पौरुष तारक। केशव-जैसा बलवान् निर्भीक व निस्पृह आदमी होना मुश्किल है। हर दुखी की सहायता को यह सदा तैयार रहते हैं। चाहे रात हो या दिन, सोते हों या जागते। इसी साल एम० ए० किया है दर्शन में। हमारा ही दुर्भाग्य है, जाने दो। (देखकर) हाँ, अरे केशव, पट्टी से खून बाहर निकल रहा है। सुधी, लाओ न अपना फर्स्ट एड का का सामान। दीनू ओ दीनू, देख तो सुधी के कमरे से वह बक्स तो उठा ला।

चन्द्रिका—मैं लाती हूँ। (जाकर बक्स उठा लाती है।)

श्याम—हाँ हाँ, कोई भी पट्टी बाँध सकता है। तुम तो चन्द्रिका इस कार्य में निपुण दीखती हो।

चन्द्रिका—ज़रा हाथ सीधा कीजिए, तभी पट्टी खुलेगी।

तारक—अच्छा, आज्ञा दो भाई श्याम, चलें हम। अभी बहुत काम है। अनामा के लिए कुछ सामान भी बाजार से खरीदना है। कहिए सुधीजी, आप प्रसन्न तो हैं।

अनामा—चलिए अब देर हो रही है, नमस्ते।

मधु और श्याम—नमस्ते-नमस्ते। (सब नमस्ते करते हैं।)

केशव—बस रहने दो चन्द्रिका, क्यों कष्ट करती हो? यह तो रोज का ही है।

श्याम—बस, ठीक है, तुम थोड़ी देर आराम करो। चाय आती है। मैं भी अभी आया।

मधु—मैं मुन्नू को देखूँ वह सो रहा था। (दोनों जाते हैं।)

चन्द्रिका—मेरा खयाल है कि स्पिरिट का फाहा एकाध बार और लगाने से यह ठीक हो जायगा। अच्छा मैं चलूं प्रोफेसर?

सुधी—हाँ, जाओ आज तुम्हारा समय व्यर्थ गया।

चन्द्रिका—नहीं, आज मेरा सौभाग्य है। मुझे बहुत-कुछ जानने को मिला। आज जीवन के कई दृष्टिकोण देखे।

सुधी—क्या उसमें कुछ याद रखने लायक भी है?

चन्द्रिका—यही कि मायोपिया न केवल आँखों में ही होता है बल्कि वह बुद्धि का मानसिक रोग भी है।

केशव—(धीरे से) धन्य हुआ।

सुधी—(उत्सुकता से) क्या मतलब?

चन्द्रिका—जानने के लिए दूर नहीं जाना होगा, फिर बताऊँगी।

सुधी—अच्छा (चन्द्रिका जाती है, दीनू चाय लाता है।)

केशव—(चाय पीते हुए) तारक तो अब बड़ा आदमी हो गया है। ब्याह भी कर लिया है। क्या नाम है उसकी स्त्री का?

सुधी—क्या किसी की पत्नी का नाम पूछना उचित है?

केशव—(घबराकर) ओह भूल हो गई! क्षमा करना सुधी। अब

कुछ भी न पूछूँगा।

(चुपचाप चाय पीता है।)

सुधी—क्या करते रहते हैं आप आजकल ?

केशव—कुछ देर सोचकर···मैं, मैं···कुछ भी नहीं, मैं करूँगा भी क्या ! माँ माँ खिलाती हैं, पेट भर खा लेता हूँ और घूमता हूँ। **(उठता है।)** अच्छा चलूं, श्याम तो आए नहीं, उनको बहुत काम है। रात भी हो रही है। मुझे तो कोई काम है भी नहीं। अच्छा नमस्ते।

सुधी—बैठिए, जायँगे ? नमस्ते।

(केशव नमस्ते करके चला जाता है।)

सुधी—**(धम्म से कौच पर बैठती है।)** चन्द्रिका कहती है आज उसने जीवन के कई दृष्टिकोण देखे। चन्द्रिका ने बड़ा साहस किया। सचमुच वह भी बड़ी विचित्र है। तो···तो क्या यह मेरा भ्रम ही है ? मेरे विश्वासों की नींवों पर खड़ा कल्पना का प्रासाद क्या धोखा है ? क्या सचमुच पुरुष स्त्री के प्रति इतना उदार है, इतना उपयोगी, इतना आसक्त ? तो क्या यह मेरी भ्रान्ति थी ? ओह कितने प्रसन्न हैं ये दोनों; आज मुझे लग रहा है जैसे मैंने तारक को खो दिया है, जानकर खो दिया है और मेरी अपेक्षा उसे एक मुझसे भी अधिक सुन्दरी मिल गई है—चपल, चंचल, तीक्ष्ण विचारों वाली मेधाविनी नारी, वह नारी जिसने उसके जीवन के दुख के मलिन स्रोत को दुग्ध धवल अमृत में बदल दिया है। आज वह उसका दास है। उसके संकेत की गति है। उसकी दृष्टि का प्रसार है जो दूर क्षितिज तक प्रकाश की, हँसी की, उल्लास की रेखाएँ बिखेरता चलता है। वह क्या से क्या हो गया और मैं वही हूँ। उसी जगह जहाँ आज से आठ वर्ष पहले थी। यह सूना-सूना क्या है ? क्या नवोदित उषा की धीरे-धीरे बिखरने वाली उल्लास राशि को प्रमाद की दुराग्रह निद्रा में मैंने खो नहीं दिया ? मधु के आनन पर गर्व की तृप्ति की जो किरणें भर उठती हैं क्या वे उसके भीतर से चमक उठने वाले आनन्द की किरणें नहीं हैं ? कितना सौंदर्य है उन दोनों के सम्मिलित जीवन का ! जैसे वे दो न होकर

एक हों, जैसे उनके सुख-दुख, हर्ष-शोक, विषाद एक हो गए हों और एक हो गई हों उनकी आकृतियाँ। मैं क्या करूँ! अब क्या हो सकता है! बहुत बड़ा भ्रम हुआ मुझे। मेरी धारणा के मन्दिर की दृढ़ नींवें आज हिल गई हैं। मैं क्या करूँ! निश्चय ही मधु आज मुझसे अधिक पूर्ण है, भाई के पौरुष का सहारा पाकर। अनामा के भीतर जैसे स्वयं तारक की छाया व्याप्त हो।

(दीनू का प्रवेश)

दीनू—बीबीजी, बड़े भैया पूछते हैं क्या केशव बाबू चले गए।

सुधी—हाँ, गये। (दीनू जाता है।) केशव पौरुष का रूप, उसके कुर्ते के भीतर से उसके शरीर की पुष्टता, सामर्थ्य, सौन्दर्य जैसे बरबस झांक उठते हों। आज कितना सुन्दर लगता है यह युवक! केशव भोला-भाला, परोपकारी; चन्द्रिका जब पट्टी बाँध रही थी तब वह उसी की ओर देख रहा था। जैसे मेरा अस्तित्व ही न हो, जैसे भीतर-ही भीतर मुझसे घृणा करता हो। **(अपने ही भीतर की छायामूर्ति प्रश्नोत्तर करती है।)**

छायामूर्ति—किन्तु उसके भीतर जो स्नेह का समुद्र उमड़ता रहता है तुम उससे बेखबर हो सुधी! वही उसका मनुष्य है, वह तुम्हारे प्रति·····

सुधी—हाँ, वही उसमें मनुष्य है। मेरे द्वारा तारक के तिरस्कृत होने के बाद यह व्यक्ति प्रकट हुआ। इसने मेरे निकट आने की चेष्टा की। किन्तु मैंने तिरस्कार कर दिया, उपेक्षा की, जैसे मैं इसे जानती न होऊँ।

छायामूर्ति—फिर भी तुमने देखा वह तुम्हारे प्रति कितना विनीत है। तारक की पत्नी का नाम पूछने पर जो तुमने झिड़क दिया तो उसने तत्क्षण कह डाला—'ओह, भूल हो गई, क्षमा करना सुधी, अब न पूछूँगा।'

सुधी—फिर भी क्या मुझे इसके सामने समर्पण कर देना चाहिए था?

छायामूर्ति—समर्पण के बाद दम्पति का नवजीवन प्रारम्भ होता है सुधी। तुम्हारी घृणा शालीन का केवल कुल प्रमुख परम्परा से पाली हुई है। उसका आधार तर्कमय है। सद्भावनामय नहीं, उसमें जीवन नहीं है।

सुधी—जीवन नहीं है। मुझे तारक की उन्नति पर ईर्ष्या हो सकती

है, अनामा के सुख पर जलन हो सकती है, मधु के मुख पर चमकती प्रसन्नता से उद्विग्नता हो सकती है, पर अपनी धारणाओं पर दुख नहीं है, मैं पूर्ण हूँ।

छायामूर्ति—(हँसो) पूर्ण हो, पूर्ण। (हँसी) यह ईर्ष्या, जलन और उद्विग्नता बतलाती हैं तुम्हारे भीतर अपनी निष्ठा की गहरी नींव हिल उठी है सुधी, हृदय का संघर्ष बता रहा है कि तुम मार्ग खोजने को व्याकुल हो। तुम्हारा पहला पथ अन्धकारमय है, उसमें स्वच्छन्दता हो सकती है, उच्छृंखलता बढ़ सकती है, रसाभास भी उसमें मिल सकता है पर वास्तविक शान्ति नहीं। तुमने अपनी हृदय की पुस्तक में से तारक के सम्बन्ध के पृष्ठ फाड़े नहीं हैं, उनकी स्याही धुँधली हो गई है, किन्तु केशव·· केशव···

सुधी—किन्तु केशव, क्या केशव को अब पा सकूँगी? उसका दिल टूट गया है। मैंने ही उसे तोड़ा है।

छायामूर्ति—प्रयत्न करके देखो। असम्भव कुछ भी नहीं है।

सुधी—मैं प्रयत्न नहीं कर सकती। मैं पीछे नहीं लौट सकती। मुझे केशव के प्रति कोई आकर्षण नहीं है। मैं वैसी हूँ, वैसे ही रहूँगी।

छायामूर्ति—कुर्ते के भीतर जैसे उसके शरीर की पुष्टता, सामर्थ्य, सौन्दर्य बरबस झाँक उठता हो। नहीं, तुम नहीं रह सकतीं। यह तुम्हारा हठ तुम्हारे ही जीवन के नाश का कारण बनेगा।

सुधी—बनेगा तो बने। मैं उससे याचना नहीं कर सकती, नहीं कर सकती। अरे, यह बटुआ किसका है? हो सकता है केशव का हो। अरे यह चिट्ठी कैसी है? किसी स्त्री के हाथ का पत्र है। ऐसे हैं ये हजरत, चले ये मुझसे प्रेम करने। यह चिट्ठी। ओः चन्द्रिका के सम्बन्ध की। फाड़ दूँ इसे, यही दण्ड है इस केशव का। पर अक्षर कितने सुन्दर हैं! स्त्री का पत्र है, स्त्री का, पढ़ूँ, पढ़ लूँ। देखूँ तो क्या लिखा है। (पत्र पढ़ती है।)

"श्रीपु! बड़ी प्रतीक्षा के बाद तुम्हारा पत्र मिला। किन्तु धारणा के प्रतिकूल। मैं मानती हूँ विवाह से पूर्व सभी कन्याएँ बहन होती हैं। उन्हीं में से आगे चलकर पत्नी बनती हैं। इसलिए तुम्हारा यह सोचना कि तुम

चन्द्रिका को बहन कह चुके हो भ्रान्त है। फिर तुम्हारा यह निश्चय कि तुम सुधी के अतिरिक्त और किसी से विवाह न करने का निश्चय कर चुके हो, मुझे उचित नहीं दिखाई देता। तुम्हें मालूम हो कि चन्द्रिका तुम्हारे लिए बेचैन है। वह तुम्हीं से विवाह करना चाहती है। क्या तुम ऐसा न करके नारी के प्रेम को ठुकरा दोगे? सुधी का निश्चय दृढ़ है, वह शादी नहीं करेगी। उस अवस्था में तुम्हें सुयोग्य, सुन्दर, सुशील और बी० ए० पास चन्द्रिका को स्वीकार कर लेना चाहिए। वैसे तुम्हारे पत्र से यह संकेत मिलता है कि तुम चन्द्रिका के गुण, रूप, सौन्दर्य पर मुग्ध हो। वह अपने को तुम्हारे बलिष्ट, दृढ़ हाथों में सौंपने का निश्चय कर चुकी है।

तुम्हारी बहन,
चारु शीला

(चुप्पी)

सुधी—(पत्र हाथ में लिये सोचती रहती है, सोचती ही रहती है) नहीं, यह नहीं हो सकता। चन्द्रिका के साथ केशव का विवाह नहीं हो सकता। केशव मेरे हैं। मैं स्वयं उनके घर जाकर उनसे विवाह का प्रस्ताव करूँगी। यह नहीं हो सकता। अब मैं समझी, क्यों चन्द्रिका ने पट्टी बाँधी। क्यों चन्द्रिका मेरे पास मेरा मन्तव्य जानने आई। मेरी ही शिष्या होकर मेरे साथ विश्वासघात। मैं विवाह करूँगी। केशव मेरे हैं। केशव! केशव!!

(थोड़ी देर बाद)

मैंने बड़ी भूल की, जो ऐसे परोपकारी साधु पुरुष का तिरस्कार किया।

(केशव का प्रवेश)

सुधी—केशव बाबू!

केशव—सुधी जी, मेरा···मेरा·····

सुधी—(प्रसन्नता, आदर से) आइए केशव बाबू, यह है आपकी चीज।

केशव—अच्छा, धन्यवाद !

सुधी—बैठिए न। मैं आपसे···

केशव—(देखते हुए) जी·····

सुधी—मैं अपने अपराध की आपसे क्षमा चाहती हूँ। केशव बाबू···

केशव—अपराध, कैसा अपराध ? ओह···किन्तु···मैं बहुत दूर निकल आया हूँ सुधी !

सुधी—(घबराहट से)·····अर्थात्।

केशव—मैंने चन्द्रिका से विवाह करने का निश्चय कर लिया है। मैं वचनबद्ध हूँ।

सुधी—(जोश में) किन्तु आपने तो मेरे अतिरिक्त किसी और से विवाह न करने की प्रतिज्ञा की थी।

केशव—हाँ, वह कुछ दिन पूर्व—अब नहीं।

सुधी—और अब ?

केशव—अब मैं विवाह करने जा रहा हूँ। माँ का आग्रह मैं नहीं टाल सकता। इसके अलावा···

सुधी—इसके अलावा क्या ?

केशव—चन्द्रिका सद्गृहिणी सिद्ध होगी। इसी भावना को लेकर मैं उससे विवाह करूँगा। जीवन केवल प्रेम, सौन्दर्य के बल पर ही नहीं चलता, वहाँ जीवन की गाड़ी को सुन्दर ढंग से चलाने के लिए तत्परता, सहयोग, सदाशयता की भी आवश्यकता है। वह चन्द्रिका में है। तुम्हारे भीतर मनुष्य के प्रति तिरस्कार, अपने प्रति अहंकार, ज्ञान के प्रति जागरूकता का भाव कभी भी उभरकर तुम्हें विद्रोही बना सकता है। वह मेरी भूल थी जो मैंने केवल सौन्दर्य और ज्ञान के सहारे तुमसे जीवन की भिक्षा माँगी थी। वह भूल थी सुधी !

सुधी—तुम मेरा अपमान कर रहे हो केशव !

केशव—तो मैं क्षमा चाहता हूँ।

सुधी—मैं···मैं तुमसे प्रेम करती हूँ केशव !

केशव—(चुप)

सुधी—बोलो, बोलो···(पैरों पर गिरकर)···बोलो, तुम मुझे स्वीकार करते हो ? मैं तुम्हें वह सब दूँगी जो एक पति नारी से चाहता है। मुझे चन्द्रिका ने धोखा दिया, मैं तुम्हारी हूँ।

केशव—(सुधी को हटाते हुए) मुझे दुख है सुधी ! मैं वचनबद्ध हूँ। (जोश में) मैं पीछे नहीं हट सकता। मैं एक नारी का हृदय नहीं तोड़ सकता। मैं वचनबद्ध हूँ। मुझे क्षमा करो।

सुधी—चन्द्रिका गरीब है, कुरूप है, बहन की आश्रिता है। साधारण पढ़ी-लिखी है।

केशव—विवाह विनिमय नहीं चाहता सुधी। वह हृदय देखता है। वह एक दूसरे की सहानुभूति चाहता है। वह जीवन की नाव को चलाने में एक-दूसरे की सहायता चाहता है। तुम्हारा अनुरोध आत्म-समर्पण और स्वीकृति ईर्ष्या पर निर्भर है जब कि चन्द्रिका का समर्पण स्वाभाविक, सहज स्नेहपूर्ण है।

सुधी—केशव बाबू !

केशव—(मुँह मोड़कर सामने) तुमने देखा, स्वाभाविक स्नेह के कारण उसने स्त्रियोचित लज्जा की अवहेलना करके मेरे घाव में पट्टी बाँधी, और तुम देखती रहीं जब कि तुम्हारे मुँह से संवेदना का एक भी शब्द न निकला।

सुधी—वह मेरी भूल थी।

केशव—वही स्वाभाविक था सुधी ! यही मायोपिया है, बुद्धि का मायोपिया। इसकी कोई औषध नहीं है।

सुधी—किन्तु मैंने अपना विचार बदल लिया है केशव बाबू !

केशव—(हँसकर) मैंने भी अपना विचार बदल लिया है। एक दिन मैं तुम्हें चाहता था। वह विचार अब बदल गया। (चला जाता है।)

सुधी—सुनो, केशव बाबू, सुनो। मैं तुम्हें वह सब दूँगी जो एक नारी पति को दे सकती है। सुनो केशव, ठहरो···के···श···व···।

(दूर तक आवाज सुनाई देती है। सुधी गिर पड़ती है।)

अपनी-अपनी खाट पर

(प्रहसन)

: पात्र :

रमाकान्त
उमाकान्त
उमाकान्त की पत्नी

[एक ही उम्र के दो व्यक्ति आमने-सामने खाटों पर लेटे हैं। दोनों अपने-अपने विचारों में मग्न हैं। मालूम होता है जीवन की गहराई में जाकर कहीं खो गए हैं या उनको इस समय सारा संसार हस्तामलकवत् दिखाई दे रहा है। आँखें चढ़ीं, विचारों के कारण मुख-मुद्रा गंभीर, मुँह लटका हुआ, बदन दोनों के दुबले। मूँछों से घिरा हुआ मुँह। बाल बेढंगे। एक कुरता पहने तो दूसरा वैसे ही पहलवानी ढंग से नंगा, केवल धोती बाँधे। कंधे पर अंगोछा, कभी-कभी उससे मक्खियाँ उड़ाता है। दूसरा बार-बार मूँछों पर ताव देता है। समय सायंकाल। बरामदे के सामने छोटा सा बाग जिसमें पेड़-पौधों के साथ कुछ बड़े वृक्ष भी हैं; पक्षी चहचहाते हैं, गिलहरियाँ दौड़ लगाती हैं। कभी-कभी चिड़ियाँ बरामदे में आकर फुदकने लगती हैं। दोनों मित्र बातें करते हैं और बार-बार उठ-उठकर लेट जाते हैं जैसे नशे में हों।

उमाकान्त—(भर्राती आवाज में गम्भीरता से) क्यों जी, रमाकांत, सो रहे हो क्या ? भई वाह, क्या आनन्द आ रहा है। मैं कहता हूँ,··· सचमुच इस समय तो जैसे दिव्य दृष्टि ही मिल गई है। तो भी इतना तो मानना पड़ेगा कि यह जीवन व्यर्थ तो एकदम नहीं है। भला पैर पसार-कर सोने या लेटने से अधिक सुख की क्या और किसी से तुलना हो सकती है ? आकाश में रुई के बादलों की तरह मेरे विचार उड़ रहे हैं और मैं कहता हूँ ये गिलहरियाँ दौड़-भाग क्यों रही हैं, लेट क्यों नहीं जातीं। (विचारों में गुम-सुम हो जाता है।)

रमाकान्त—बिलकुल अजब बात है, कतई अहमकपन है, अहमकपन। हाँ जनाब, (जैसे बड़ी गहराई से कोई बात सोचकर लाये हों) ऐसी-वैसी बात नहीं है, पते की है। भला कोई इस गहराई तक जाय तो सही·····

उमाकान्त—(जागकर) किस गहराई तक रमाकांत, क्या तुम सो रहे हो ? नहीं, नहीं, लेटे हुए हो, भला मैं भी क्या सोचने लगा। छिः। हाँ तो···

रमाकान्त—मैं कहता हूँ यह दुनिया भी खूब है। फिर भी यह तो मानना पड़ेगा कि आदमी के पैर लम्बे बनाकर बहुत बड़ी गलती हुई है और फिर छोटे-बड़े दोनों तरह के नाखून क्यों बनाये ? यह समझ में ही नहीं आता। जब हम उन्हें काटते हैं कैंची से, चाकू से, निहन्ने से···हैं···अरे और यह निहन्ना लोहे का, और लोहा एकदम सोने के विपरीत सस्ता, पर लड़ाई का घर। यदि लोहा न होता, तो तलवारें क्यों बनतीं और तलवारें न होतीं तो लड़ाई ही क्यों होती। फिर अनाज न सस्ता होता, राशन की मुसीबत,···और उमाकांत, क्या चुच्चू-से बैठे हो यार ? कोई बात कहो।

उमाकान्त—मैं सोच रहा हूँ तुम्हारा मतलब किस गहराई से है ? पानी की गहराई, आसमान की गहराई, जमीन की गहराई, पेड़ की जड़ों की गहराई, बातों की गहराई; आखिर किस गहराई से तुम्हारा मतलब है ? सच तो यह है सबसे बड़ी गहराई है दिल की। कहो दोस्त कैसी कही। मानोगे किसी से पाला पड़ा था।

रमाकान्त—पाला। सुनो जी, पाला पड़े तुम्हारे घर पर, मैं तुम्हारे

घर, हाँ मैं तुम्हारे घर पर बैठा हूँ तो क्या गाली दोगे ? अगर तुम कहो कि मैंने तुम्हें भंग पिलाई है, तो मैंने भी तुम्हें बीसों बार भंग पिलाई है। यहाँ किसी के दबैल नहीं हैं। हमने पी है तो इसलिए थोड़े ही···अरे मैं क्या कह रहा था उमाकांत, जरा बताना तो—

उमाकान्त—तुमने देखा है कि चिड़िया की फुर्ती प्रसिद्ध है। एक घण्टे भी आराम से नहीं बैठ सकती। एक घण्टे भी, एक मिनट भी, नहीं हाँ आ···ऽऽ···

रमाकान्त—फिर वही—मैं कहता हूँ वह बैठे ही क्यों ? क्या उसने भाँग पी है। और पी है तो पीने दो तुम्हारा क्या जाता है। रही बात यह कि थोड़े दिनों बाद 'प्रोहीबिशन' हो जायगा, फिर भंग कहाँ से मिलेगी··· हाँ, यह बात है, जिस पर हम लोगों को गहराई से सोचने की जरूरत है। क्या मिस्टर उमाकान्त कोई इलाज बता सकते हो यार ? मर जायँगे हम तो, क्या खयाल है ?

उमाकान्त—(जरा उठकर) खयाल अच्छा है, बिलकुल ठीक, आलराइट, यानी कतई आलराइट, मुझे जरा भी नशा नहीं है। हाँ, जनाब, यहाँ ऐसे-वैसे नहीं हैं। तोले दो तोले तो कुछ गिनते ही नहीं हैं। एक बार एक दोस्त के घर से पीकर जो चले तो चला चल, चला चल, चला चल चलते ही रहे। इसका मुझे अफसोस नहीं है। अफसोस इसका है कि मैं अपना घर ही भूल गया। पर तुम जानो पैर तो अपने आप घर की तरफ चले ही जाते हैं। सो साहब, जा पहुँचे, घर के दरवाजे पर। अब मैं सोचूँ क्या यही मेरा घर है ? लगा खड़ा-खड़ा सोचने। खड़ा ही तो रहा, सुन रहे हो तुम रमाकान्त ? (लेट जाता है।)

रमाकान्त—(आँखें बन्द किये ही) क्या, तुमने कुछ कहा ? देखो मैं सुनता सब की हूँ, पर करता मन की हूँ। (उठकर बैठ जाता है।) आदमी का बड़प्पन इसी में है कि सुने सब की, करे मन की। पर मैं यह सोचता हूँ कि ये फूल किसने पैदा किये ? अगर तुम कहो कि जिसने हमें पैदा किया उसी ने फूलों को भी पैदा किया, तो यह तर्क तुम्हारा गलत है, क्योंकि

जिसने फूल पैदा किये, उसने काँटे क्यों पैदा किये ? निश्चय ही फूल पैदा करने वाला काँटे नहीं पैदा करेगा। जो लड़का या लड़की पैदा कर सकता है वह गधा पैदा नहीं कर सकता, घोड़ा पैदा नहीं कर सकता और वह गधा पैदा कर भी ले और घोड़ा भी मान लो किसी तरह पैदा कर सके, तो हाथी तो पैदा कर ही नहीं सकता। बात साधारण नहीं है, इस बात की तह तक पहुँचने की जरूरत है। हाँ, उमाकान्त क्या समझे ? अरे तुम क्या समझोगे ! पी ली और भींचू-से बस आँख मीचे पड़े रहे। मैं कहता हूँ यह दुनिया एक दिन में नहीं बन गई। हमारा घर ही क्या एक दिन में बन गया था ? फिर इतने बड़े आसमान को बनाने में तो हजारों साल लगे होंगे। हजारों साल, नहीं लाखों साल ! लेकिन मैं भी कैसा पागल हूँ, आकाश तो कुछ है ही नहीं। खाली है। जैसे तकिये का गिलाफ।

उमाकान्त—तकिये का गिलाफ, क्या मानी ! अमा, पी है तो इसका मतलब यह तो नहीं कि तकिये के गिलाफ-जैसी छोटी-छोटी बातें करो। यह जो कौवे काँव-काँव करते हैं इस पर ही मान लो तुम्हें लिखने को कहा जाय तो तुम क्या लिखोगे ? बात यह है जैसे हम बातें करते हैं वैसे कौओं की भी जबान है। उनको भी यह ऐसे ही प्यारी है जैसे तुम्हें। रही यह कि उसमें साहित्य नहीं है, तो उसका जवाब यह है जबान है तो कभी-न-कभी साहित्य बन ही जायगा। साहित्य बन गया तो कवि भी होंगे, लेखक भी, नाटककार भी होंगे। उपन्यास लिखने वाले भी, फिर रोमांस, फिर प्रगतिवाद और फिर तू तू, मैं मैं। खैर जाने दो और मुझे तो अभी से इनके बोलने में कभी-कभी कविता के अंश सुनाई दे जाते हैं जैसे फ्री वर्स में बोल रहे हों। या कि प्रयोगवादी कविता का कोई अंश हो जो समझ में नहीं आता। वैसे नौसिखिए अनाड़ी जब बिना फ्री वर्स की गति-विधि जाने उसमें रचना करने लगते हैं, तब कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि ये लोग भी कौओं के साहित्य-निर्माण में सहयोग दे रहे हैं।

रमाकान्त—ऐं क्या कहा—कौओं के साहित्य-निर्माण में सहयोग दे रहे हैं ? कौन, इससे बड़ा प्रश्न तो आजकल यह है कि पेड़ के जमीन पर

गिरे पत्तों की तरह लोगों का 'मॉरल' गिर गया है। जैसे गले का कौआ गिर जाता है उसे उठाने की आवश्यकता होती है ठीक इसी तरह, अरे, मैं क्या कह रहा था उमाकान्त ? यह तो निश्चय है कि मैं कुछ कह अवश्य रहा था। पर कुछ भी कहना साहित्य तो नहीं है। खैर, गहरी होती जा रही है, आँखें मिची जा रही हैं मित्र, तुम्हारा क्या हाल है ? अरे गये क्या ?

उमाकान्त—कौन, किससे कह रहे हो, मुझसे ? भला मैं क्यों जाता ? मैं कोई पराये घर थोड़े ही बैठा हूँ। अपने घर हूँ, अपनी खाट पर, तकिये का सहारा लेकर, चाहे लेटूँ या सोऊँ, या उठकर चल दूँ। कोई रोक सकता है मुझे ?

रमाकान्त—ठीक है (गम्भीरता से) मुझे ही घर जाना है। पर जैसे किसी ने पैर बाँध दिये हों। सुनो उमा, मित्रता का यह अर्थ नहीं कि किसी को गालियाँ दी जायँ। (क्रोध से) मार बैठूँगा मार, किसी भरोसे में मत रहना। हाँ, कहे देता हूँ। मित्र, नशा तेज हो रहा है। कहीं धतूरा तो नहीं डाल दिया था, फिर तो···मरा ही समझो। (भर्राई हुई आवाज में)···उमाकान्त, उमा···देखो, यदि ऐसा-वैसा हो जाय तो···तो···मुझे और कुछ नहीं, बच्चों का ख्याल है। शशी, पुन्नू, चुन्नू, मुन्नू, रीता, और क्या नाम है ? अरे मैं तो नाम ही भूला जा रहा हूँ। बीवी का नाम, उमाकान्त·····भला, मेरी बीवी का क्या नाम है ? बोलो, अब क्यों बोलोगे ? मत बोलो, पर देखो, यदि मुझे कुछ हो जाय तो···तो क्या होगा ? अरे मैंने इतनी क्यों पी, क्यों न पहले ही कह दिया कि थोड़ी दो। आकाश उड़ रहा है, जमीन उठ रही है। दीवारें, दीवारें हिल रही हैं भाई उमाकान्त !

उमाकान्त—(अपने ध्यान में उठकर बैठ जाता है।) रमाकान्त, देखो, ये मक्खियाँ कितना तंग कर रही हैं। जरा उड़ा तो दो। कितना अच्छा होता यदि कोई मेरी टाँग सीधी कर देता। मैं ही करूँ क्या ? (धीरे-धीरे पैर सरकाता है) सरक तो गया। यही क्या कम है। जीवन करमकल्ले के पत्तों की तरह है। पत्ते-पर-पत्ते हटाते जाओ अन्त में फिर पत्ते। प्याज की

तरह छिलके-पर-छिलके। पर प्रश्न यह है जीवन है कहाँ, असली जीवन है गले में। न जाने अब तक यह बात लोगों को क्यों न मालूम हो सकी। गला कट जाय तो···सिर काट जाय तो···पेट कट जाय तो··· मैं भी क्या सोचने लगा। रमाकान्त, प्रश्न यह है आँख देखती है या रोशनी, कहो क्या हाल है? गिलहरियाँ अब भी दौड़ रही हैं। अरी ठहरो, तुम्हें भी एक बार पिलाने की जरूरत है। फिर देखूँ कैसे दौड़ती हो और ये चिड़ियाँ, एकदम बाहियात। क्या आराम कुछ भी नहीं है? अरे कोई है, एक गिलास पानी तो दे दो, यह गले को क्या हो रहा है? जैसे···क्या कहूँ! जाने दो मुझे ही उठना पड़ेगा। अरे रमाकान्त, ऐसा भी क्या पीना, होश ही नहीं है जनाब को। मुँह बाये पड़े हैं। भला यह भी कोई बात है। मुझसे कोई कहे तो मैं एक मील की लम्बी दौड़ लगा सकता हूँ। हाँ जनाब, एक मील की, क्या समझे? और न भी हो तो चल तो सकता ही हूँ। मेरे लिए खड़ा होना भी मुश्किल नहीं है। (सामने देखकर) कौन, कौन है, अरे तुम?

(पत्नी का प्रवेश)

पत्नी—(हैरान होकर) और तुम तो राशन लेने जा रहे थे। मैं भी कहूँ, आखिर आये क्यों नहीं। दोनों मुँह बाये औंधे लेटे हैं। सुना कि नहीं? राशन कब आएगा? चूल्हा कब फुँकेगा? रोटी कब बनेगी? मैं तो तंग आ गई। फिर पी ली होगी। आग लगा दूँ उस राँड में। जब देखो तब... (रमाकान्त घबराकर उठने की चेष्टा करता है। उमाकान्त आँखें खोलता है।)

उमाकान्त—तुम आ गईं। वाह वाह, देखो कैसा सुन्दर समय है। मैं आ ही तो रहा था। इसी कम्बख्त रमा ने पिला दी। जरा देखो। रमाकान्त, क्या बाहियात बात है। उठते क्यों नहीं। मुझे भी इस भलेमानस ने··· इतनी देर से कह रहा हूँ उठ, चल चलें। पर उठे तब न? हाँ क्या कह रही हो, और न भी कहो तो क्या मैं समझता नहीं हूँ, सब समझता हूँ। मुझे वे दिन भी याद हैं जब तुम्हारी हमारी शादी हुई थी और तुम मुस्कराकर

मुझे देखा करती थीं और·····

पत्नी—भाड़ में जाय तुम्हारा समझना। रोज रोज, ऐसी भी क्या आदत मरी। न जाने इसमें क्या स्वाद है? अब उठोगे भी या पड़े ही रहोगे। लड़के और लड़की को भी पिला दी है और पचास रुपये जेब में डाल कर गए हैं बाजार। इसी भीड़ में कहीं दब-दबा जायँ। बेहोश होकर गिर पड़ें तो क्या हो? मोटर है, बग्घी है, टाँगा है, टमटम, फिटन, रिक्शा, बस, ट्रक—एक चलती है सड़क पर? और फिर आदमी, औरतें, गाय, भैंस, कुत्ते, कुतियाँ न जाने अब तक क्यों नहीं आये? मैं तो चिन्ता के मारे मरी जा रही हूँ। तुमने राशन का जिम्मा लिया था। सुना···उठो अब!

उमाकान्त—(झपटकर खाट पर बैठ जाता है।) हैं, क्या वे लोग बाजार गये हैं? तुम ठीक कहती हो, न जाने क्या-क्या है सड़क पर। रमाकान्त, सच कहता हूँ ऐसा ही था—तो सुनती हो (**पत्नी से**) मैं जाता हूँ, देखता हूँ। सचमुच बड़ी खराब बात है। वे नालायक गये ही क्यों? आजकल के लड़के किसी का भी कहना नहीं मानते? धौंताली हैं धौंताली। जो मन में आया करेंगे। मैं अभी-अभी चला। तुम जरा एक गिलास पानी हीः हीः हीः ही···न जाने गले को क्या हो रहा है। (**जाती है**) आज तो बड़ा बाँकपन है। ही ही ही ही···

रमाकान्त—अरे क्या रात होती जा रही है? न जाने क्यों जब देखो तब रात हो जाती है। जरा आराम करो, आँखें मींचो रात दिखाई देगी। यह भी अजीब उल्लू किस्म की बात है। (**आँखें खोलकर**) अरे अभी तो उजाला है। मैं भी कैसा बहक गया। सचमुच उमाकान्त, तुम भी अजीब पिनकी हो। न कहीं चलोगे, न घूमोगे, न फिरोगे, बस, पी और लेट रहे। अच्छा तुम लेटे हो तो हम भी तुम से कम नहीं हैं। हाँ जरा देखना घर खबर कर दो भाई कि देर से आवेंगे। (**लेटता है।**)

उमाकान्त—यही तो तुम में बुरी आदत है रमाकान्त। पीकर महा निकम्मे हो जाते हो। (**पत्नी पानी लाकर देती है, वह पीता है।**) अच्छा अब चलो। (**पत्नी से**) तुम जाओ भीतर, कोई आगया तो क्या कहेगा।

जैसे मैं स्त्री-शिक्षा का पक्षपाती हूँ, उनके बाहर घूमने फिरने का भी। पर सरी साँझ बाहर निकलना, बरामदे में घूमना ठीक नहीं लगता।

पत्नी—(कड़ककर) अच्छा, तुम उठो और जल्दी जाओ। बच्चों को देखो, कहाँ गये हैं। अभी-अभी सुना मोटर से ताँगे की टक्कर हो गई, दो आदमी मर गए। मेरा जी भी मरा न जाने कैसा हो रहा है! सुन रहे हो न? उठो। देखो तो सही जाकर इन मोटरों-ताँगों के मारे तो बाहर निकलना भी दूभर है। मैं जाती हूँ, साग जल रहा होगा।

उमाकान्त—रमाकान्त, क्या कहा, कहाँ आदमी मर गए? अच्छा, तुम जाओ। (पत्नी जाती है।) वाकई साग जल रहा होगा। यहाँ दिल जल रहा है रमाकान्त, क्या सुना नहीं?

रमाकान्त—सुना तुमने उमाकान्त, दो आदमी मर गए। कोई बड़ी बात थोड़े ही है। मर गए होंगे, क्या ठिकाना, और मरते कोई देर लगती है? यार, कहीं हमीं दोनों तो नहीं मर गए!

उमाकान्त—तुम कैसी बातें करते हो? भला हम क्यों मरने लगे? और मर जाते तो बात कैसे करते।

रमाकान्त—तुम ठीक कहते हो, मर जाते तो बात कैसे करते? पर यार एक बात है।

उमाकान्त—क्या?

रमाकान्त—भूत बनकर भी तो बात कर सकते हैं। आखिर हम मर जाते तो दोनों ही तो भूत होते। मुझे तो यही सही मालूम होता है।

उमाकान्त—क्या सही मालूम होता है यार! ऐसा न कहो, मुझे डर लग रहा है भाई। फिर तो बड़ी मुसीबत होगी। तुम्हारी बात बिलकुल गलत है। अभी हमारी बो आई थी। अभी उसने बात की थी। याद नहीं क्या कहा था दोस्त रमाकान्त, खैर जाने दो, मुझे डर लग रहा है।

रमाकान्त—भूत के पैर टेढ़े होते हैं और तुम्हारे पैर बिलकुल टेढ़े हैं। उल्टे; सिर पगायत की तरफ और पैर तकिये की तरफ। भूत के यही तो लक्षण हैं।

उमाकान्त—कहाँ टेढ़े हैं ? ओह, तकिया कहाँ गया ? अच्छा हम भूत ही हैं तो फिर खाट पर क्यों पड़े हैं ? उठ क्यों नहीं बैठते, दौड़ने क्यों नहीं लगते, किसी को चिपट क्यों नहीं जाते ? मेरा तो जी करता है कि मैं अपने दफ्तर के हैड क्लर्क से चिपट जाऊँ। रोज सुबरा तंग करता है। न छुट्टी देगा, न आराम से बैठने देगा। आप इधर-उधर बातें करता रहेगा, साहबों की खुशामद करेगा, रिश्वत लेगा और कहेगा कि मैं काम के मारे पिसा जा रहा हूँ। जी में आता है उसकी गिच्ची घोट दूँ।

रमाकान्त—मैं तो उस्ताद अपने पड़ौसी से चिपटूँगा। साला रोज तंग करता है। न सोता है न सोने देता है। रात के बारह बजे तक ग्रामोफोन बजाता रहता है; कूड़ा हमारे घर में फेंकता है। उसकी औरत नंगी नलके पर नहाती है और हमें आज्ञा होती है—'इधर न आना, हम नहा रहे हैं।' हम कहते हैं कपड़े पहनकर नहाओ, परदे में नहाओ तो नहीं मानेगी। दिन-भर नंगी होकर नलके पर कपड़े धोवेगी। मकान में पेटीकोट-जम्पर पहनकर घूमती रहेगी। हम ज़रा निकलेंगे तो गाली देगी—'बेशरम हैं, औरतों का लिहाज नहीं करते।' पिछले दिनों लड़की की शादी थी तो पन्द्रह दिन तक लाउडस्पीकर लगाकर वह हाय-तोबा मचाये रखी कि नाक में दम आ गया। मैं तो उसी को चिपटूँगा भाई उमाकान्त !

उमाकान्त—पर ठहरो, अब मैं क्या उमाकान्त हूँ ?

रमाकान्त—तो क्या हो ?

उमाकान्त—भूत होकर भी वही नाम ! गलत बात। अच्छा देखो यह सामने क्या आ रहा है ?

रमाकान्त—जाने दो यार कोई होगा, अपने को क्या ?

उमाकान्त—अभी परीक्षा हुई जाती है। मैं कहता हूँ यह गधा है, गधा सफेद-सफेद।

रमाकान्त—(आँखें खोलकर) हैं ? नहीं, यह कुत्ता है कुत्ता। अरे क्या पागल हो ? भले आदमी, कुत्ते और गधे में भी भेद नहीं जानते ? मैंने ऐसे कुत्ते देखे हैं बीसों बार। चलो चुप हो जाओ।

उमाकान्त—(गहराई से उधर देखता हुआ) सुनो रमा, यह गधा ही है। भला कहीं कुत्ता इतना बड़ा होता है ?

रमाकान्त—होता कैसे नहीं है ? होता है, फिर होता है। बीस बार होता है।

उमाकान्त—मैं कहता हूँ नहीं होता, नहीं होता।

रमाकान्त—मैं कहता हूँ नहीं होता।

उमाकान्त—मैं कहता हूँ होता है। सौ बार, हजार बार, लाख बार होता है। इस बार कहो नहीं होता तो फिर·····

रमाकान्त—फिर क्या, मारोगे ? लो मारो, देखूँ कैसे मारते हो ?

पत्नी—(चिल्लाती हुई) गाय सब पौधे खाये जा रही है और ये देख रहे हैं पड़े-पड़े। मैं कहती हूँ तुम्हें हो क्या गया है ? क्या इतना भी नहीं होता कि इसे हटा ही देते।

उमाकान्त—तो क्या यह गाय है ?

रमाकान्त—तो क्या यह कुत्ता नहीं है भाई उमाकान्त !

उमाकान्त—बस, रमाकान्त, अब फैसला हो गया। हम भूत नहीं हैं, आदमी हैं।

पत्नी—क्या कह रहे हो ? मैं भी तो सुनूँ ?

रमाकान्त—कुछ नहीं, कुछ नहीं। अब कुछ उतरा है।

उमाकान्त—पर मुझे तो और बढ़ता जा रहा है रमाकान्त भाई।

पत्नी—तुम गये नहीं ? (चिल्लाकर) न जाने मेरे बच्चों को क्या हो गया। वे अभी तक नहीं आये। हाय राम, कोई बचाओ ! हाय-हाय !

उमाकान्त—(रोकर) हाय, हाय, क्या हो गया, क्या हो गया ? हाय, न जाने मेरे लड़कों को क्या हो गया ? कोई बचाओ। हू हू हू हू (रोता है।)

रमाकान्त—बचाओ। बचाओ ! (रोता है।) हू हू हू हू !

पत्नी—तुम क्यों रोते हो ? यह तो नहीं करते कि बच्चों को ले आएँ। लगे ऊपर से रोने आदमी होकर ! जाओ निकलो। उन्हें देखकर लाओ। हाय, हाय, (हाथ पकड़कर उठाती है।) उठो, जाओ, निकालो !

उमाकान्त—(गम्भीर होकर) अरे जाता तो हूँ भागवान्! क्या मुसीबत है! जाता हूँ। रमाकान्त, चलो भाई, बिना मरे स्वर्ग नहीं मिलेगा।

पत्नी—हाँ जाओ, लड़की रो रही है। मैं भीतर जाती हूँ।

उमाकान्त—रमा, क्या चलना ही पड़ेगा? उन नालायकों को देखने जाना ही पड़ेगा? जरूर जाना पड़ेगा? ऽ ऽ ऽ ई ऽ ऽ ऽ।

रमाकान्त—दिखाई तो ऐसा ही देता है। अरे तुमने देखा, ये पीपल के पत्ते कितने जोर से हिल रहे हैं। देखो न?

उमाकान्त—हाँ, सचमुच हिल तो रहे हैं, बड़े जोर से हिल रहे हैं भाई। क्या भूकम्प के कारण ये पत्ते हिल रहे हैं? पर जमीन तो हिलती दिखाई नहीं देती। शायद यह कोई नये ही किस्म का भूकम्प हो, जिसमें पेड़-ही-पेड़ हिलते हों, मकान न हिल पाते हों।

रमाकान्त—शायद, यह पत्ते जरूर हिल रहे हैं मियाँ। मैं यह सोचता हूँ···

उमाकान्त—मैं भी एक बात सोचता हूँ।

रमाकान्त—क्या? सुनो, तुम वही बात नहीं सोच सकते जो मैं सोच रहा हूँ।

उमाकान्त—तुम पहले बताओ, लो मैं नहीं सोचता।

रमाकान्त—नहीं, तुम बताओ। जाओ मैं भी नहीं सोचता।

उमाकान्त—तो मुझे कष्ट करना पड़ेगा, जाओ मैं कुछ भी नहीं सोचता।

रमाकान्त—तो मैंने ही कोई ठेका लिया है। फिर भी बताए देता हूँ देखो ये पत्ते हिल रहे हैं।

उमाकान्त—यह तो मैं भी देखता हूँ। बस, अब समझ में आया।

रमाकान्त—क्या?

उमाकान्त—वह मारा, क्या सूझ है सचमुच रमा, तुमने तो अब तक वैसे ही जिन्दगी बिता दी। भई वाह!

रमाकान्त—कुछ कहोगे भी।

उमाकान्त—जैसे पत्ते हिलते हुए भी -वहीं डटे रहते हैं—न आगे बढ़ते हैं न पीछे हटते हैं।

रमाकान्त—तुम ठीक कहते हो, जबान हिलाते रहो और पड़े रहो।

उमाकान्त—पर यार, मुझे तो जाना पड़ेगा उन्हें देखने। किन्हें भला? अरे सुनती हो, तुम कुछ कह गई थीं। मैं जा रहा हूँ, जा रहा हूँ। (लेटे-लेटे ही) ओह जरा बचकर चलो रमा!

रमाकान्त—चलो मैं चल तो रहा हूँ। ओह, कितनी भीड़ है, ताँगा, टमटम, मोटर, बस! बायें हो जाओ न!

उमाकान्त—यार, भाई, जरा देखकर चलो, कहीं दब-दबा न जाना।

रमाकान्त—हाँ भाई, पर आँखें तो घिरी जा रही हैं।

उमाकान्त—दिखाई तो मुझे भी कुछ नहीं देता रमाकान्त! जरा मेरा हाथ पकड़ लो। देखो तो कितनी भीड़ है! मोटर, तांगा, गाड़ी, रिक्शा, एक मुसीबत है? उस पर साइकिल की टन-टन, हटो, बचो···भागो मत, मैं भी तो चल रहा हूँ!

रमाकान्त—हाँ भाई चलो। पर ठहरो, जरा सुस्ता तो लूँ, दम फूल रहा है।

उमाकान्त—हाँ, यार इतनी दूर घूमने के कारण थक तो मैं भी गया हूँ। बैठ जाओ जरा यार! इधर हो जाओ जरा फुटपाथ पर!

रमाकान्त—हाँ और क्या। जान बची लाखों पाये। बैठो यार! बैठ जाओ। ओह!

(फिर दोनों आंखे मींच लेते हैं।)

वार्गेन

पात्र

कैलाश	पत्र-सम्पादक
कान्ति	उप सम्पादिका
सरोज	एम० ए० की छात्रा
वृद्ध	कैलाश का पिता
आगन्तुक	कैलाश का भावी श्वसुर
बिरजू	नौकर

[साधारण मकान की बैठक। कमरा लगभग १२–१६ की चौड़ाई-लम्बाई में। सामने दीवारों का रंग मटमैला, कुछ सफेदी लिये, जिसके भीतर की ईंटें चमकती हैं। पूर्व की तरफ़ एक खाट में मसहरी लगी है। दक्षिण की तरफ़ पुरानी मेज़ पर अस्त-व्यस्त किताबों में अधिकतर अंग्रेज़ी के और कुछ मासिक पत्र। कलमदान में एक दवात, लाल होल्डर, एक फाउंटेन पैन। राइटिंग पैड पर लाल स्याही के मोटे-मोटे धब्बे। एक कुरसी जिसका एक हाथ टूटा हुआ है। पश्चिम की तरफ़ एक तख़्त, जिस पर तीन-चार आदमी बैठ सकते हैं, नीला कपड़ा चादर की तरह बिछा है। उसके साथ दो छोटे-छोटे गाव तकिए। बीच में छोटी मेज़ पर एश ट्रे—सिगरेट के टुकड़ों तथा राख से भरी। बड़ी मेज़ के ऊपर एक कलैंडर गांधीजी के चित्र-सहित! स्तालिन का एक चित्र खाट के साथ दीवार पर टँगा है। मेज़ के साथ कानिस्त पर एक घड़ी बिम्बेन टिक-टिक कर रही है। और दक्षिण-

पश्चिम में मेज़ से सटी आरामकुरसी पुराने ढंग की, जिसके हत्थे दूर तक फैले हुए हैं। आरामकुरसी का सिरहाना एकदम मैला और नीचे गद्दी बिछी हुई है। पश्चिम की तरफ़ जूते रखने की बैंत की आलमारी, जिसके दोनों सिरे खुले हुए। बैठक का दरवाज़ा पश्चिम की तरफ़ मकान के कॉरीडोर में जाता है। पूर्व और पश्चिम की तरफ़ दो लोहे के जंगलों वाली दो खिड़कियाँ। बीच में चौड़ा दरवाज़ा। इस समय वही दरवाज़ा रंगमंच के सामने है, इसलिए खिड़कियों एवं दरवाज़े से मकान का दीवारों तक सारा भाग दिखाई देता है। तख़्त पर एक युवक, जिसकी आयु लगभग छब्बीस वर्ष; सुता हुआ गोरा शरीर, बिखरे बाल ऊपर को उठे हुए, कनपटी की हड्डियाँ उभरी हुईं। क्लीन शेव्ड, नाक पर कत्थई रंग के मोटे सेलोलाइट के चश्मे का फ्रेम। शरीर पर खादी का कुरता ऊँचे गले का, काश्मीरी पट्टी की जवाहर जाकेट, गले का बटन खुला है। ढीला खद्दर का पायजामा, पैरों में चप्पल। देखने में कुशाग्र बुद्धि, किन्तु आँखों में वासना की हल्की चमक। आंखें मर्मभेदी। एक तकिए का सहारा लिये, चप्पल पहने, पैर फैलाए, अधलेटा एक अख़बार पढ़ रहा है। हाथ में अधजली सिगरेट का धुआँ उड़ रहा है। वह ध्यानमग्न है। एकदम पत्र फेंककर उठ बैठता है और कमरे में चुपचाप चक्कर लगाने लगता है। फिर चिल्लाकर आवाज़ लगाता है। 'बिरजू ओ बिरजू!' फिर चुप हो जाता है जैसे विचारों में खो गया हो। फिर भी टहलता रहता है और बीच में मेज़ पर रखे मासिक पत्र के पन्ने पलटकर अनर्थ नेत्रों से यों ही देखता है। फिर खुला छोड़कर टहलने लगता है। हाथ की सिगरेट उंगलियों तक आ पहुँचती है। इसी बीच ध्यान भंग होते ही एक कश खींचकर कोने में फेंक देता है, फिर कुछ ध्यान आ जाने पर उसे पैर से मसल देता है। फिर चिल्ला उठता है, 'बिरजू ओ बिरजू!']

बिरजू—(एक ट्रे में चाय लाता हुआ कुछ प्रौढ़-सा व्यक्ति) हम

तो बाबू ला रहे थे। आप वैसे ही चिल्लाते हैं। ऐसे हम से काम न होगा। हाँ कि साहब, (तख़्त पर रख देता है।)

कैलाश—अरे ज़रा जल्दी किया करो बिरजू, और देखो तुम्हें आज कई बार चाय बनानी होगी। ऐसा करो, बाज़ार से कुछ चने की दाल और मीठा लेते आना। डबल रोटी तो होगी घर में? न हो तो वह भी ले आना।

बिरजू—(उसी गम्भीरता से) ले आएँगे। पैसे दे दीजिए।

कैलाश—(दो रुपये का नोट फेंककर) और एक कैप्स्टन का पैकेट भी, समझे? जाओ। (गुनगुनाता हुआ बैठकर चाय प्याले में डालता है और जेब में से सिगरेट निकालकर जलाता है। इसी समय बिरजू जाता है, और एक युवती, जिसकी अवस्था बाईस वर्ष की, पतली-दुबली किन्तु सुडौल, हरी धारीदार खादी की धोती, चप्पल, आँखों पर चश्मा, हाथों में एक-एक चूड़ी, कलाई में घड़ी) आओ सरोज, आज तो बहुत दिनों बाद···लो बैठो, एक प्याला चाय·····तो कुछ खाओगी भी क्या?

सरोज—(तकिए के सहारे बैठकर) बहुत थक गई हूँ कैलाश बाबू! ओह, हाँ, चाय तो मैं वैसे भी बहुत पीती हूँ। केवल चाय, ओह, सारा शरीर काम करते-करते टूट गया। सचमुच तुम लोग न जाने कैसे इतना काम कर लेते हो! (मेज़ की तरफ देखकर) यह क्या सोवियत लिटरेचर का नया अंक है? जनवाणी भी दिखाई देती है। (उठकर दोनों पत्र देखती है।) गुड, लेकिन आजकल तो पढ़ाई के मारे अवकाश ही नहीं है।

कैलाश—लो, चाय तैयार है मैडम, लो!

सरोज—(प्याला हाथ में लेती हुई, कैलाश की आँखों में झाँककर मुस्कराती है।) शेवी, न जाने तुम्हारा यह दकियानूसी कमरा कब बदलेगा।

कैलाश—(चाय पीते हुए ध्यान में लीन-सा) क्या-क्या? मुझसे ही कुछ कह रही हो सरोज?

सरोज—क्या यहाँ कोई और भी है? न जाने तुम्हारा क्या टेस्ट है? मैं तो परीक्षा देने के बाद मद्रास तक की बात सोच रही हूँ। हो सका तो

कोलम्बो भी जाऊँगी।

कैलाश—रमेश का क्या हाल है ?

सरोज—ठीक है, सीता से रोमान्स की बातें चल रही हैं। सुना है, घर पर भी पूछने-पढ़ने जाने लगी है। एक दिन तो दोनों बाग़ में घूम रहे थे।

कैलाश—तो शादी क्यों नहीं कर लेता ? अब तो प्रोफेसरी भी मिल गई है।

सरोज—मेरी तो उस दिन क्लास में झड़प हो गई। कहने लगे बढ़ती हुई जनसंख्या को जब तक न रोका जायगा तब तक हमारे देश का सम्पत्तीकरण ठीक नहीं हो सकता और जनसंख्या को रोकने का एकमात्र उपाय है कृत्रिम उपायों द्वारा प्रजनन-निरोध। 'कण्ट्रैक्ट विद नो प्रोडक्शन।'

कैलाश—फिर !

सरोज—मैंने कहा—पहले तो कृत्रिम उपायों का सब लोग इस्तेमाल नहीं कर सकते, फिर पाप भी तो है। गांधीजी के बताए मार्ग पर क्यों न चला जाय ! और लड़के भी बोल रहे थे। उनमें से एक कह उठा—नई ब्रह्मचारिणी ! मैंने नाराज़ होकर कहा—हाँ ब्रह्मचर्य ही एकमात्र उपाय है।

कैलाश—देर से शादी भी तो। सरकार कानून बना दे कि बाईस वर्ष से पहले लड़की और तीस वर्ष से पहले लड़के शादी न कर सकें, तो हमारी समस्या का हल निकल सकता है। इस तरह प्रति परिवार से लगभग चार-पाँच बच्चों की कमी हो जायगी।

सरोज—तब क्या व्यभिचार न बढ़ जायगा कैलाश बाबू ?

कैलाश—(चाय का प्याला रखता हुआ) व्यभिचार और पार क्या चीज़ है ? (तैयार होकर बैठता है) आओ, मैं तुमसे आज इसी पर निपट लूँ।

सरोज—मैं बहुत देर नहीं बैठूँगी ! पढ़ते-पढ़ते थक गई तो सोचा चलो कान्ति से मिल आऊँ। क्या वह अभी तक नहीं आई ? तुम्हें तो

सवेरे कह रहे थे।

कैलाश—हाँ, आने ही वाली होगी। वैसे भी वह इस समय 'ऑफ ड्यूटी' है। उसकी ड्यूटी साधारणतया दो बजे समाप्त हो जाती है।

सरोज—क्या रात की ड्यूटी उनकी कभी नहीं लगती? तुम्हीं न लगाते होगे। (हँसती है।)

कैलाश—बात यह है सरोज, कि कान्ति तो चाहती है लेकिन मैं ही टालता रहता हूँ। वैसे भी मैं स्त्रियों के कठिन काम के हक में नहीं हूँ। इसीलिए हमारे स्टाफ के मेल मेम्बर ही रात की ड्यूटी देते हैं, महिलाएँ नहीं।

सरोज—अच्छा तो है, रात को स्त्री घर में ही अच्छी लगती है। (हँसती है।) रोमान्स भी·····

कैलाश—रोमान्स भी मेरी रानी! (उसके पास जाकर) रोमान्स ही तो जिन्दगी है।

सरोज—लेकिन मैं इसमें विश्वास नहीं करती। जन-संख्या को रोकने का बहाना लेकर लोगों को खुल खेलने का मौका मिल गया है। (पीछे हट जाती है।)

कैलाश—(अप्रतिभ-सा होकर सरोज की आँखों में आँखें गड़ाकर) तुम इतना पढ़-लिखकर भी जिन्दगी का वास्तविक रूप नहीं जान पाई, लेकिन मैंने निश्चय कर लिया है·····

सरोज—क्या, क्या निश्चय कर लिया है आपने?

कैलाश—बुरा तो नहीं मानोगी? कह दूँ?

सरोज—(बाहर से घबराहट दिखाती है, भीतर से उत्सुकता) नहीं रहने दीजिए, न जाने क्या है आपके मन में। मैं 'हाँ' कैसे कह दूँ!

कैलाश—तो जाने दो, परीक्षा के बाद उस दिन मैं सब कह डालूँगा। और तुम भी तो जानती हो। फादर आये हुए हैं, चाहते हैं लड़की अच्छी है, मैं शादी कर लूँ। क्या खयाल है तुम्हारा?

सरोज—तो कर लो न। शादी तो आखिर एक दिन करोगे ही।

(उदास-सी हो जाती है।) अच्छा, कान्ति बहन तो अभी तक···मैं चलती हूँ।

कैलाश—तुम नाराज हो गई ?

सरोज—(उसी मुद्रा में) नाराज मैं क्यों होती ?

कैलाश—नहीं, नहीं सरोज, उस दिन सिनेमा से लौटते समय की बात मुझे याद है। सिर्फ तुम्हारे स्वीकार करने की देर है। मैं सब-कुछ छोड़ सकता हूँ, माँ-बाप भी।

सरोज—(प्रकृतिस्थ होकर) देखा जायगा। अभी तो बहुत देर है। मैंने अभी कोई फैसला नहीं किया है। और कान्ति···

कैलाश—कान्ति की बात जाने दो। वह इस लायक नहीं है कि उससे शादी की जाय। उसकी शादी होने वाली है।

सरोज—कहाँ ?

कैलाश—यह मैं नहीं जानता। बोलो क्या कहती हो ? (मुस्कराता है।)

सरोज—(अपने में सिकुड़कर) मैं क्या जानूँ, भाई जानें।

कैलाश—भाई ? वह तुम्हारी मरजी के बाहर जाने वाले थोड़े ही हैं। उन्होंने तो एक दिन साफ कहा था कि सरोज अपनी शादी खुद करेगी। वह दिन कैसा होगा जब हम फैसला करके उन्हें चौंका देंगे। क्यों, है न ? इम्तिहान के बाद क्यों न हम लोग कहीं घूमने जायँ। वहीं कहीं शादी भी कर डालें। हनीमून करके ही लौटें। मेरी काफी छुट्टियाँ हैं।

सरोज—लेकिन मुझे तो सीता का खयाल आता है। मुखर्जी ने कैसा धोखा दिया उसे। अब वह रमेश के पीछे है। शायद होगी यह भी नहीं।

कैलाश—लेकिन देखने में तो सीता बुरी नहीं है। काफी खूबसूरत है। फिर क्यों मुखर्जी ने मना कर दिया ?

सरोज—इन आदमियों का कुछ भी ठीक नहीं है। भौंरे हैं भौंरे। कभी इस फूल पर, कभी उस फूल पर।

कैलाश—असल में फूलों का दोष है, जो उन्हें परेशान करते हैं; अपनी तरफ खींचते हैं ?

सरोज—तुम्हारी अपने बारे में फिर क्या राय है ?

कैलाश—तुम मेरी परीक्षा लेना चाहती हो सरोज ! जो पहले परीक्षा लेना चाहता है उसे परीक्षा देनी होगी। लेकिन मैं जानता हूँ तुम वह फूल हो जिसके चारों ओर भौंरे मंडराते भले ही रहे हों बैठे नहीं हैं। इसीलिए मैंने तुम्हें आत्म-समर्पण कर दिया है।

सरोज—आत्म समर्पण ! क्या कहते हो कैलाश बाबू ! सुना है कि तुम···

कैलाश—बकवास है (टहलता हुआ उसके सामने खड़ा होकर) बकवास है ! तो क्या तुम विश्वास करती हो ?

सरोज—मैं चलूँगी, मुझे पढ़ना है। (दरवाज़े की तरफ़ बढ़ती है।)

कैलाश—ठहरो सरोज ! (हाथ से उसका कन्धा पकड़कर) मैं चाहता हूँ मुझे जवाब देती जाओ।

सरोज—क्या यह भी कोई कहने की बात है ? परेंगितज्ञानफला हि बुद्धयः[1] (जैसे ही सरोज बाहर जाने लगती है वैसे ही कान्ति प्रवेश करती है। कान्ति २३-२४ वर्ष की सुन्दर युवती, गोरा रंग, दुहरा बदन, बड़ी-बड़ी आँखें, सुन्दर मुखाकृति, ओठों पर लिपस्टिक। नाखून रँगे हुए, सुसज्जित वेश-भूषा, साड़ी के ऊपर हाफ कोट, हाथ में पर्स।)

कान्ति—हलो सरोज, यू आर आलसो हियर। कैसी तैयारी है ?

सरोज—(रुककर) ठीक है कान्ति बहन। सोचा तुम आने वाली हो मिल आऊँ। आजकल तो पढ़ाई के मारे नाक में दम है। कैलाश बाबू ने बताया तुम आने वाली हो। (किताबें दिखाती हुई) पढ़ना, पढ़ना बस और कुछ नहीं; थोड़े दिन रह गए हैं।

कान्ति—डिग्रीज़न ले लो, फिर प्रोफेसरी मिल जायगी। मैं तो चार

१. बुद्धिमान लोग इशारों से मन की बातें समझ लेते हैं।

नम्बर से रह गई।

सरोज—दफ्तर से आ रही हो क्या ?

कान्ति—(तख्त पर बैठकर) इस समय छुट्टी है।

कैलाश—चाय पियोगी कान्ति ! (चाय बनाता है।)

कान्ति—यह भी कोई पूछने की बात है कैलाश ! जरा देर हो गई। घर में एक मेहमान आ गए। माँ अकेली थीं। मुझे ही उनका स्वागत करना पड़ा।

सरोज—कौन थे ?

कान्ति—ऐसे ही।

कैलाश—लो, जरा ठण्डी है। अरे बिरजू, ओ बिरजू, न जाने कहाँ मर गया। जरा देखूँ जाकर।

सरोज—मैं देखती हूँ आप बैठिए। (जाती है।)

कैलाश—कौन थे ?

कान्ति—मुझे देखने आए हैं।

कैलाश—(सतर्क होकर) अर्थात् ?

कान्ति—उनके एक लड़के डिप्टी कलेक्टर हैं। (सरोज लौटकर आती है।)

सरोज—भीतर तो कोई नहीं है। अँगीठी में आग जल रही है। गरम कर लाऊँ।

कैलाश—बाहर गया होगा।

कान्ति—कर लाओ न चाय गरम। मैं थक गई हूँ। (तकिये का सहारा लेकर बैठ जाती है।)

सरोज—चाय मैं बना लाती हूँ। (जाती है।)

कान्ति—कुछ बाजार से लाने की आवश्यकता हो तो मेरी साइकिल है। नौकर कहाँ गया ?

कैलाश—बाहर गया होगा। पिताजी आए हुए हैं, ठीक से बैठ जाओ।

कान्ति—ओह, समझी। कहिए हम लोग चले जायँ कैलाश बाबू?

कैलाश—नहीं, तुम बैठो, मैं ज़रा भीतर हो आऊँ। मैं भी कैसा हूँ, याद ही नहीं रही कि पिताजी आये हुए हैं। (सरोज आती है।)

(इसी समय गंजे सिर, दुहरा शरीर, गठीले कद के एक सज्जन प्रवेश करते हैं, अवस्था लगभग पचपन। ऊँचा काला कोट खुले गले का, भीतर टेनिस-कट गले की सफेद कमीज़। हाथ में अंगूठी। बंगाली धोती तथा फुलस्लीपर, माथे पर बिन्दी का तिलक। सिर पर चुटिया बँधी हुई।)

वृद्ध—कैलाश, मैं आज की ही रात की गाड़ी से जाऊँगा। मैं तुमसे बात करना चाहता था।

कैलाश—(उठकर) जैसा आप चाहें। क्या चाय भी आपने नहीं पी?

वृद्ध—पी चुका हूँ। अभी पीकर आ रहा हूँ। बैठो, (दोनों लड़कियाँ उठकर प्रणाम करती हैं) बैठो, मैं यहाँ बैठूँगा। (आराम कुरसी पर बैठते हैं।)

कैलाश—पिताजी, यह कान्ति देवी हमारे पत्र की उपसम्पादिका हैं और यह सरोज, एम० ए० की छात्रा, मेरे उपसम्पादक की बहन।

वृद्ध—(आराम कुरसी पर टाँग फैलाकर बैठते हैं, जूते पहने। जिससे दोनों जूतों के तले उन लड़कियों के सामने रहते हैं। सरोज और कान्ति विवश होकर बैठी रहती हैं। थोड़ी देर चुप्पी रहती है। फिर एकदम दोनों उठकर चलने लगती हैं।)

दोनों—(जाते हुए) नमस्ते!

वृद्ध—(गम्भीरता से) नमस्ते!

कैलाश—जा रही हो? नमस्ते! रात की ड्यूटी.....

(दोनों चली जाती हैं। थोड़ी देर चुप्पी रहती है।)

वृद्ध—(अपने-आप) यह स्वतन्त्रता है। (जूते समेटकर अकड़कर बैठते हुए) कैलाश, यह सब मैं क्या देख रहा हूँ? मैं लड़की देख आया हूँ।

पढ़ी-लिखी, सुशील है, वर भी कुलीन है, यही है।

कैलाश—(नीची निगाह करके चुप रहता है।)

वृद्ध—क्या कहते हो बेटा, यदि तुम चाहो तो···

कैलाश—(चुप)

वृद्ध—इससे तो अच्छा है कि···

कैलाश—(तेजी से) पिताजी !

वृद्ध—क्या इससे अधिक किसी प्रमाण की आवश्यकता है मेरे बेटे ?

कैलाश—तब तो मुझे कुछ भी नहीं कहना।

वृद्ध—तभी तो मैं पूछना चाहता हूँ।

कैलाश—फिर मुझे प्रतिवाद करने की जरूरत ही नहीं दिखाई देती। स्त्रियों से मिलने से ही कोई चरित्रहीन कैसे हो सकता है, यह मैं नहीं जानता।

वृद्ध—लेकिन मैं तो तुम्हारे विवाह का सन्देश लेकर आया हूँ। तुम्हें···

कैलाश—मुझे विवाह की कोई आवश्यकता नहीं दिखाई देती।

वृद्ध—क्यों ?

कैलाश—आवश्यक नहीं है।

वृद्ध—तो फिर क्या आवश्यक है, व्यभिचार ?

कैलाश—(उत्तेजित होकर) मुझे आपके सामने नहीं बोलना चाहिए। किन्तु···

वृद्ध—किन्तु जो कुछ मैं देख रहा हूँ उससे मुझे यह समझने में कोई सन्देह नहीं रह गया है कि तुम्हारा विवाह हो जाना जरूरी है। मैंने संसार के सभी रूप देखे हैं। मैं स्वयं कभी इन्हीं मार्गों से होकर···

कैलाश—फिर तो मैं पिता के मार्ग पर ही चल रहा हूँ।

वृद्ध—(सकपकाकर) मेरा मतलब यह नहीं है। मैं···

कैलाश—आपका मतलब जो भी हो। मैं स्वतन्त्र हूँ।

वृद्ध—(नम्र होकर) फिर तुम क्या कहते हो ? वे लोग तैयार हैं।

इसी फागुन में ब्याह कर देना चाहते हैं। चाहो तो लड़की देख लो। इन दोनों से बुरी नहीं है।

कैलाश—(खड़ा होकर) आप···(होंठ काँपने लगते हैं।)

वृद्ध—(खड़ा होकर) मैं सब जानता हूँ, सब जानता हूँ। मैंने इतने दिन भाड़ झोंककर नहीं काटे हैं बेटा, मैं इस स्वतन्त्रता का अर्थ भी समझता हूँ। सुनो कैलाश, तुम्हारा भला इसी में है कि तुम मेरी बात मान लो।

कैलाश—इस समय देश को सन्तान की आवश्यकता नहीं है। मैं विवाह नहीं करूँगा। मैं प्रतिदिन पत्र में यही लिखता हूँ। इधर पाकिस्तान से अधिक संख्या में लोगों के आ जाने से देश की जनसंख्या इतनी अधिक बढ़ रही है कि यदि इसको रोका न गया तो हमारा देश कीड़ों की तरह मनुष्यों से भर जायगा और भूख से मर जायगा।

वृद्ध—(हतप्रभ होकर सोचता है।) किन्तु इसका उत्तर क्या यह कहूँ कि यह दम्भ है, राजनीतिक छल है।

कैलाश—इसका उत्तर कुछ भी नहीं है, पिताजी! मैं विवाह नहीं कर सकता।

वृद्ध—क्या तुम्हारा यही अन्तिम उत्तर है? तो फिर इसका अर्थ यह है कि तुम पिता की आज्ञा के उल्लंघन की भी परवा नहीं करते। फिर इसका यह भी अर्थ है कि मुझे अधिकार है कि मैं तुम्हारे सम्बन्ध में जो कुछ भी चाहूँ, सोचूँ। सोच लो, मैंने जो कुछ भी कमाया है, सम्पत्ति अर्जित की है, उसे मैं तुम्हारे ही हित में खर्च करता रहा हूँ। एक बात और मुझे यह भी समझ लेनी चाहिए कि लड़कों को पढ़ाने-लिखाने का अर्थ है उन्हें उच्छृंखल बनाना। मर्यादा भंग करने को उद्यत करना। जाने दो मुझे कुछ भी नहीं कहना। (घूमने लगता है।)

(बिरजू का प्रवेश)

बिरजू—बाबू, चने की दाल मिठाई हम ले आये हैं, सिगरेट नहीं मिली।

वृद्ध—(क्रोध में भरकर घूमता हुआ) जवान लड़कियों से एकान्त में मिलना, उनके साथ हँसना, बैठना आवश्यक हो गया है। विवाह करके दायित्व से भागना आवश्यक हो गया है। (ठहरकर) लड़के, क्या-क्या आवश्यक हो गया है, सुनूँ तो ? ओह ! मुझे यह मालूम होता ! न जाने कितने कष्ट सहकर, स्वयं भूखा रहकर मैंने तुम्हें शिक्षा दिलाई। पत्नी के गहने बेचे, तुमको सुखी रखा। तुम्हारे पढ़ने में विघ्न नहीं पड़ने दिया, किन्तु आज···(सर्र से निकल जाता है। फिर लौटकर) मैं अभी जा रहा हूँ।

कैलाश—(खड़ा होकर) यदि मैं सरोज से विवाह कर लूँ·····।

वृद्ध –(उसी तेजी से) नहीं यह कभी नहीं हो सकता। मैं हर किसी लड़की से विवाह की अनुमति नहीं दे सकता ? बेटा, मैंने कहा था न ? मैं तुम्हें इससे सुन्दर लड़की दे रहा हूँ। कुलीन, पढ़ी-लिखी, घर के काम में चतुर।

कैलाश—(सोचता हुआ) तो मैं विवाह नहीं कर सकता। चाहे तो मुझे त्याग भी सकते हैं आप !

वृद्ध—(क्रोध में) त्याग सकते हैं ? कह दिया, जैसे कुछ भी न हुआ हो ! सुनो, कान खोलकर सुनो। मैं लड़की के पिता से टीका स्वीकार किये लेता हूँ, तुम्हें आना होगा। न हो, तुम नौकरी छोड़ दो। मेरे पास इतनी जमीन है कि निर्वाह हो जायगा, नौकरी छोड़ दो। अखबार की नौकरी भी कोई नौकरी है ? न दिन चैन न रात चैन। देखो तो अपना शरीर, आधा भी नहीं रहा। चलो मेरे साथ। (रुककर) बोलो क्या कहते हो ?

कैलाश—मैं नहीं जा सकूँगा, मैं विवाह भी नहीं करूँगा।

वृद्ध—(चुपचाप उठकर चल देता है) चलो मेरे साथ बिरजू !

कैलाश—मैं स्टेशन तक चलूँ ?

वृद्ध—(क्रोध से) नहीं, कोई जरूरत नहीं है।

कैलाश–(थोड़ी देर तक स्तब्ध-सा रहता है। प्याले उठाकर मेज पर रखता है और उठकर फिर दरवाजा बन्द कर लेता है। फिर खाट के सिरहाने से सरोज और कान्ति दोनों के चित्र निकालकर देखता है, देखता

ही रहता है) केवल तुम्हारे लिए सरोज, तुम क्या जानो मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकता ! नहीं, यह नहीं हो सकता। (दरवाजा खटखटाने की आवाज) कौन ? (सरोज का चित्र खाट के सिरहाने छिपाकर रखता हुआ) कौन ?

एक आवाज—खोलिए न ?

कैलाश—कौन ! ओह कान्ति, तुम हो ? (दरवाज़ा खोलकर) अरे, तुम क्या घर नहीं गई ?

कान्ति—नहीं, मैं सरोज के घर बैठी थी। जब तुम्हारे पिताजी को आते देखा तब समझ गई कि तुम नहीं गए। क्या कुछ खटपट हो गई ? बड़े गुम-सुम-से जा रहे थे ! यह सरोज बार-बार क्यों आती है ?

कैलाश—हाँ, तुम बैठो न ! यहाँ तख्त पर बैठ जाओ, यह लो तकिया लो। पिताजी नाराज होकर चले गये। कान्ति तुम बैठो न !

कान्ति—(बैठकर) क्यों, क्या बात हो गई। सुनो कैलाश बाबू, अब यह सब नहीं छिप सकेगा ?

कैलाश—मैं तुम्हारी बात नहीं समझा। मेरी आज रात की ड्यूटी नहीं है; हम लोग सिनेमा चलेंगे।

कान्ति—नहीं, मैं सिनेमा नहीं जाऊँगी। एक मेहमान मुझे ही देखने आये हैं, शायद माताजी मान लें। (पास सरककर) किन्तु मैं तो तुमसे और ही बात करना चाहती हूँ। भयंकर सत्य, हृदय को कँपा देने वाला कठोर यथार्थ है कैलाश बाबू !

कैलाश—(हँसकर) क्या तुम आजकल कोई कहानी लिख रही हो ? ठहरो, मैं तुम्हारे लिए कुछ खाने का प्रबन्ध करता हूँ।

कान्ति—नहीं, तुम बैठ जाओ, मेरी बात ध्यान से सुनो। अब तो मेरे मरण का प्रश्न हो गया है कैलाश बाबू ? सावधान रहते हुए भी।

कैलाश—(कुछ सहमकर) क्यों, क्या बात है कान्ति ?

कान्ति—(पास जाकर दुख से) दो महीने हो गए हैं।

कैलाश—क्या कहा ? नहीं, तुम्हारा भ्रम होगा।

कान्ति—भ्रम नहीं सच है। मेरी अवस्था बिगड़ती जा रही है।

सन्देह से बचने के लिए मैं माँ के पास भी नहीं जाती। अपने कमरे में बैठी रहती हूँ।

(कैलाश चुप होकर सोचता है।)

कान्ति—बोलो, कैलाश बोलो, न हो मुझे कहीं से जहर ला दो। मैं यह नहीं सह सकती। ओह, क्या करूँ कैलाश? कोई उपाय करो, जल्दी करो। मुझे अँधेरा दिखाई देता है। मैं अपना मुँह नहीं दिखा सकूँगी कैलाश, तुम्हीं बताओ मैं क्या करूँ? **(रूमाल लेकर आँसू पोंछती है, कैलाश नीची निगाह किये सोचता रहता है।)** न जाने किस बुरी घड़ी में मेरा तुमसे परिचय हुआ!

कैलाश—ठहरो, तुम अस्वस्थ हो, एक प्याला चाय पियो। तबियत ठीक हो जायगी। **(एकदम सर से बाहर निकल जाता है, कान्ति बेचैनी से टहलने लगती है और उसे खाट के सिरहाने अपना चित्र दिखाई देता है। वह निकाल लेती है और उसे देखने लगती है। फिर उठाकर खाट पर फेंक देती है। इसी समय कैलाश का प्रवेश)** चाय आ रही है। तुम अधीर मत हो मेरी रानी!

कान्ति—**(आँखों में आँसू भरकर)** मेरी समझ में नहीं आता मैं क्या करूँ। पिछले पन्द्रह दिनों से मुझे सन्देह हो रहा था किन्तु अब तो दिन की तरह साफ़ है। इधर जो मुझे देखने आए हैं वह चाहते हैं लड़के को बुलाकर बातचीत करा दें। आज उन्होंने माँ से कहा भी था।

कैलाश—**(सोचता हुआ)** पिताजी भी यही कह रहे थे।

कान्ति—**(सतर्क होकर)** क्या? क्या कह रहे थे?

कैलाश—कि मैं विवाह कर लूँ।

कान्ति—तुमने क्या जवाब दिया? क्या तुम मान गए? तुम आदमियों का क्या है?

कैलाश—मैंने मना कर दिया।

कान्ति—मना कर दिया? क्यों? मान लेते।

कैलाश—क्या तुम भी यही कहती हो? अपनी प्रतिज्ञा भूल गईं?

कान्ति— (जमीन की तरफ देखती हुई) याद है, भूल कहाँ सकती हूँ ? लेकिन अब क्या होगा ? मुझे कोई उपाय बताओ। मैं कहीं की न रहूँगी कैलाश ?

(बिरजू चाय मिठाई लेकर आता है, कान्ति चाय बनाती है। कैलाश मिठाई का टुकड़ा मुँह में डाल लेता है।)

कैलाश—मैंने पिताजी से कहा था मैं कान्ति से शादी कर लेता हूँ।

कान्ति—(बीच में ही छोड़कर) अच्छा, फिर क्या कहा उन्होंने ?

कैलाश—उन्होंने मंजूर नहीं किया। वे चाहते हैं मैं अपनी जाति में विवाह करूँ।

कान्ति—(चाय बनाती हुई) आखिर हम भी तो ब्राह्मण हैं।

कैलाश—मैं जात-पात नहीं मानता।

कान्ति—असम्भव कुछ भी नहीं है। किन्तु तुम तो विवाह के विरोधी हो। इसके अलावा···।

कैलाश—इसके अलावा क्या ?

कान्ति—(चाय देती हुई और खुद भी पीती हुई) कुछ भी नहीं।

कैलाश—यदि तुम चाहो तो मैं केवल तुम्हारे लिए विवाह कर सकता हूँ, सिर्फ तुम्हारे लिए।

कान्ति—(चाय ट्रे में रखकर) रक्षा के लिए केवल ? यानी तुम्हें मुझसे प्रेम नहीं है। जैसे मैं केवल वेश्या हूँ। तुम्हारा मनोरंजन करने वाली एक बाजारू औरत।

कैलाश—मनोरंजन एक तरफ़ नहीं होता कान्ति, तुम्हें भी तो बुरा नहीं लगा। खैर, तुम बहुत क्रोध में आ रही हो। यह मैंने कब कहा कि मैं तुम्हें प्यार नहीं करता ?

कान्ति—(क्रोध पीती हुई) तो तुम क्या चाहते हो ?

कैलाश—यदि हम लोग शान्ति से बैठकर सोचें तो कोई-न-कोई हल निकल सकता है।

कान्ति—यानी ?

कैलाश—मैं किसी लेडी डाक्टर से सलाह ले सकता हूँ। वैसा होने पर तुम स्वतन्त्र हो।

कान्ति—(सोचती है) यह बड़ा भयंकर है। क्या हम लोग एकदम विवाह में नहीं बँध सकते कैलाश बाबू ?

कैलाश—फिर भी वह तो हमको करना ही होगा।

कान्ति—क्यों ? क्या इसलिए कि लोग आपत्ति करेंगे, सन्देह करेंगे ?

कैलाश—नहीं, मैं सन्तान का विरोधी हूँ।

कान्ति—क्या तुम इतने निर्बल हो ?

कैलाश—मैं स्वयं विवाह में विश्वास नहीं करता इसलिए भी।

कान्ति—ओह !

कैलाश—फिर भी हमें यह तो करना ही होगा। और विवाह···

कान्ति—(तनकर) और फिर मेरी स्वतन्त्रता का भी प्रश्न है। स्वतन्त्रता का प्रश्न ! मैं नहीं चाहती मैं एकदम इस विपत्ति में पड़ जाऊँ।

कैलाश—क्यों न हम विवाह के प्रश्न को भी नये सिरे से सोचें। तुम क्या सोच रही हो ? विवाह का प्रश्न समाज की मर्यादा का प्रश्न है, प्रतिष्ठा का प्रश्न है, नहीं कान्ति, क्या हम लोग इस प्रश्न को मौलिक ढंग से नहीं ले सकते ? क्या हमें समाज के बन्धनों को उन्हीं रूपों में स्वीकार करना होगा ? क्यों नहीं हम विवाह की निरर्थकता को मानकर ऐसे ही रहें। (कुछ देर ठहरकर फिर) मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मैंने निश्चय किया है कि तुम्हें···

कान्ति—यानी, क्या तुम यह बदनामी स्वीकार कर लोगे सबके सामने ?

कैलाश—मुझे मानना चाहिए। तुम उत्तेजित हो रही हो, तुम लेट जाओ। (हाथ पकड़ता है।)

कान्ति—नहीं नहीं, मैं ऐसे ही ठीक हूँ। मुझे तुम्हारी इस मसहरी से नफ़रत है।

कैलाश—(बैठकर) अच्छा वहीं बैठो, मैं यहाँ तख्त पर बैठता हूँ। हम लोग समाज की क्रूर दाढ़ों से बचे भी रह सकते हैं। आखिर व्यक्ति में कितनी सहन-सामर्थ्य है, यही प्रश्न है। उसमें भी पुरुष की अपेक्षा स्त्री ही अधिक लाँछना का पात्र बनती है। इसलिए पुरुष की अपेक्षा स्त्री में अधिक साहस चाहिए और तुम तो अभी डिप्टी कलेक्टर की बात कर रही थीं न, वह निर्दोष जीवन!

कान्ति—हाँ, वह अवश्य निर्दोष जीवन होता। अब तो मुझे लगता है मुझ में उतना साहस नहीं है। और यह सरोज!

कैलाश—साहस तो हृदय की वस्तु है। बाहर उसे खरीदने नहीं जाना पड़ता कान्ति!

कान्ति—माँ का ध्यान आता है उस समय सोचती हूँ जब हम लोग विद्रोही बनकर अकेले समाज की आलोचना-प्रत्यालोचना के सामने खड़े होंगे तब···

कैलाश—तब हम लोगों से समाचार-पत्रों के कालम रंगे जायँगे। फिर भी यह कोई ऐसी बात नहीं है जिसका हम मुकाबिला न कर सकें।

कान्ति—किन्तु माँ क्या कहेंगी? मुझे विश्वास है वे यह सुनकर या तो सिर पीट लेंगी या फिर जहर खाकर मर जायँगी कैलाश बाबू! नहीं मुझमें इतना साहस नहीं है।

कैलाश—फिर एक ही उपाय है। मैं किसी डाक्टर के पास जाता हूँ।

कान्ति· या फिर शादी फौरन!

कैलाश—शादी·····(उठकर टहलने लगता है।) शादी, (अपने ही ध्यान में मग्न होकर) मैं सदा से विवाह का विरोधी रहा हूँ, विद्रोही भी। आखिर दो व्यक्तियों के सम्बन्ध के लिए क्यों दुनिया को बताया जाय, क्यों आग के सामने प्रतिज्ञा की जाय? सब फिजूल है, फिजूल है कान्ति?

कान्ति—फिर सही क्या है? सही कुछ नहीं है? क्या यही कि हम ऐसे ही रहें और दुनिया को भौंकने दें? चाहे वह मार्ग काँटों से भरा हो या फूलों से? (चाय पीती है।) आज मुझे चाय भी अच्छी नहीं लगती।

जैसे एक अशान्त बवंडर भीतर-ही-भीतर उमड़कर तमाम नसों-नाड़ियों को तोड़े दे रहा हो। ओह, कितना बड़ा भ्रम है जीवन में। (**एकदम कैलाश के पास जाकर उसके कुर्ते की आस्तीन पकड़कर**) फिर मैं क्या करूँ, क्या करूँ कैलाश ?

कैलाश—इधर या उधर।

कान्ति—यानी।

कैलाश—यानी यह कि फ़ैसला तुम्हारे ऊपर है। अगर तुम चाहती हो कि तुम समाज का मुकाबिला इस तरह से कर सकती हो तो वैसा करो। यानी हम लोग दो दोस्तों की तरह रहें और पति-पत्नी की तरह भी। मुझे कुछ एतराज़ नहीं होना चाहिए कि तुम किसके पास रहती हो, कहाँ जाती हो, क्या करती हो। जैसे दुकान में दो साझेदार हों।

कान्ति—(**व्यंग्य से**) और ऐसे ही तुम भी चाहे जो कुछ करो, चाहे जहाँ जाओ, चाहे जिससे मिलो, यही न ?

कैलाश—बुरा तो नहीं है।

कान्ति—और जब हमारे बच्चे हो जायँ और वे देखें कि माँ-बाप दोनों का रास्ता अलग है ?

कैलाश—हाँ ?

कान्ति—और वे यह भी देखें कि माँ को किसी भी और आदमी के पास रहने में एतराज़ नहीं है और बाप को भी।

कैलाश—तो फिर ?

कान्ति—मान लो वे भी फिर ऐसा ही करें।

कैलाश—मैं उनका ज़िम्मेदार नहीं हूँ।

कान्ति—तो तुम्हें उनको पैदा करने का क्या अधिकार है ? कैलाश, जब तक सारा समाज ऐसा ही नहीं हो जाता तब तक हम सुख और शान्ति से नहीं रह सकते।

कैलाश—क्यों, कौन रोकता है तुमको ? ज़्यादा-से-ज़्यादा यही न होगा लोग हँसेंगे।

कान्ति—हँसेंगे ही नहीं, रहना दूभर कर देंगे। कोई आदमी तुम्हें अपने घर में न घुसने देगा, अपनी स्त्रियों से न मिलने देगा, तुम्हारे ऊपर विश्वास नहीं करेगा। यही हाल मेरा भी होगा। हर स्त्री मुझ से नफ़रत करेगी, मेरी तरफ़ देखना पसन्द नहीं करेगी। मैं उनके पतियों से न मिल सकूँगी। समाज में उत्सव-मिलन सभी-कुछ होते हैं; उनमें न तो हम लोगों को बुलाया जायगा न हमें वे किसी प्रकार का सहयोग देंगे। हम लोग समाज से दूध की मक्खी की तरह निकालकर फेंक दिये जायँगे।

कैलाश—हम भी वैसा ही एक समाज बना लेंगे।

कान्ति—वह जारों का समाज होगा, वह पशुओं का बन्धनहीन समाज होगा, जिसमें न कोई किसी का पति होगा न कोई किसी की स्त्री।

कैलाश—हाँ, (सोचकर) तो तुम क्या सलाह देती हो, चाहो तो डाक्टर से भी कह सकता हूँ।

कान्ति—मैं कुछ भी समझ नहीं पा रही हूँ कैलाश, भविष्य के अन्धकार, तिरस्कार, भय, घृणा और समाज के कोप ने मेरा विवेक खत्म कर दिया है।

कैलाश—आखिर फैसला तो तुम्हीं को करना है न ?

कान्ति—(तत्क्षण) क्यों, तुम कोई नहीं हो ? क्या तुम्हारी कोई जिम्मेदारी नहीं है ? (सोचकर) वैसे भी तुम्हें कोई कहने नहीं जायगा, मरूँगी तो मैं। मेरा जीवन भार हो जायगा कैलाश, ओह, मेरे प्राण काँप रहे हैं। मुझे चारों ओर अँधेरा दिखाई देता है। क्या करूँ कैलाश ? (चिल्लाकर) किस घड़ी में न जाने हमारी-तुम्हारी जान-पहचान हुई थी ? (चुप होकर जमीन देखने लगती है।) ओह, न जाने किस घड़ी में हमारी-तुम्हारी पहचान हुई ? (फूट-फूटकर रोने लगती है।)

कैलाश—(किंकर्त्तव्यः विमूढ-सा घूमता हुआ सोचता रहता है।) अजब परेशानी है ! तो तुम मुझसे क्या कहती हो ? जो तुम कहो वही मैं करने को तैयार हूँ। (पास जाकर खड़ा हो जाता है।)

कान्ति—हम लोग एकदम सिविल मैरिज कर लें। पर:·····पहले

डाक्टर···

कैलाश—मैं तुम्हें सलाह दूँगा कि पहले डाक्टर के पास जाना ठीक होगा। मैं जाता हूँ।

कान्ति—मैं कुछ भी नहीं सोच पाती। यह सरोज क्यों आई थी?

कैलाश—तो मैं डाक्टर के पास जाता हूँ।

कान्ति—पर हम क्या शादी नहीं कर सकते? मैं सोच रही हूँ···मैं सोच रही हूँ, मैं माँ को कैसे मना करूँगी। वह सदा चिन्तित रहती हैं। उनकी एकमात्र इच्छा है कि मेरा विवाह हो जाय। उन्होंने निश्चय किया है बातचीत पक्की हो जाने पर वे उनका घर भी जाकर देखेंगी। वे डिप्टी-कलेक्टर हैं। मैं क्या करूँ कैलाश·····

कैलाश—(खड़ा होकर) तो इसका अर्थ यह हुआ कि तुम डिप्टी-कलेक्टर से विवाह करोगी, किन्तु यदि मैं विवाह करूँगा···

कान्ति—खैर, पहले तुम लेडी डाक्टर के पास जा रहे हो। तुम बात करके निश्चय की सूचना मुझे दोगे। (चढ़ी होती है।) न हो अभी जाओ। मैं बहुत बेचैन हूँ। उससे दवा लेकर आओ, और देखो अगर वहीं उसी के यहाँ यह हो जाय तो···

(कैलाश कान्ति का हाथ पकड़ता है कि सरोज प्रवेश करती है।)

सरोज—तुम लोगों की कोई खास बात तो नहीं हो रही है? मैं अनधिकार प्रवेश के लिए क्षमा चाहती हूँ। घर में अशान्ति थी। मैंने सोचा यहीं पढ़ूँगी, कुछ पूछ भी लूँगी।

कान्ति—(हाथ छुड़ाकर) आओ सरोज! (कैलाश से) हाँ, तुम जाओ मैं तब तक कुछ देर सरोज से बातें करूँगी। यदि जल्दी आ सको तो मैं बैठूँ?

कैलाश—अच्छी बात है, मैं जाता हूँ।

सरोज—क्या कोई खास काम है? मैं तो आपसे कुछ पूछने आई थी, कुछ पढ़ने भी।

कैलाश—तुम बैठो सरोज, मैं अभी आया। (जाता है।) अच्छा

कान्ति !

(दोनों संकेत से बातें करते हैं। सरोज मेज पर रखी पुस्तकें देखती है।)

सरोज—मैं चलूँ। **(रुककर)** तुम कुछ उदास दीख रही हो बहन ! कुशल तो है ?

कान्ति—ठीक हूँ। आओ सरोज, हम लोग यहाँ तख्त पर बैठें।

सरोज—मेरे हृदय में एक बात रह-रहकर उठती है कि राजनीति, अर्थशास्त्र, रसायन आदि में कहीं पाप-पुण्य का जिक्र नहीं है। जबकि राजनीति और अर्थशास्त्र में इसकी भी व्याख्या होनी चाहिए।

कान्ति—गलत बात है। मेरा जी इस शास्त्र-चर्चा में नहीं पड़ना चाहता। मैं एक बात पूछती हूँ, बताओगी ? **(किताबें बन्द करके)** कैलाश बाबू के सम्बन्ध में तुम्हारी क्या राय है ?

सरोज—कान्ति बहन, इसके जवाब से पहले मैं जानना चाहती हूँ, तुम उनके सम्बन्ध में किस दृष्टि से पूछ रही हो।

कान्ति—मनुष्य के रूप में ही।

सरोज—अच्छे तो हैं, कोई भी स्त्री उन्हें स्वीकार कर सकती है ? तुम्हीं उनसे विवाह कर लो न ?

कान्ति—पागल, मैं विवाह में विश्वास नहीं करती। यह कृत्रिम बन्धन है। **(हँसती है।)**

सरोज—स्वाभाविक बन्धन क्या है ?

कान्ति—उन्मुक्त प्रेम कहूँ तो कैसा ?

सरोज—यह उन्मुक्त प्रेम क्या बला है ?

कान्ति—तू हँस रही है ?

सरोज—यह स्वच्छन्द यौवन की तरंग है, बरसाती नदी की धार है या ऐसी ही कुछ न ?

कान्ति—किन्तु यह स्वाभाविक है।

सरोज—किन्तु इसमें बहुत बड़ी भ्रान्ति भी है। बरसाती नदी हमेशा किनारे काटती रहे तो सारी पृथ्वी एक दिन डूब जाय। लेकिन बरसात

हमेशा तो नहीं रहती ?

कान्ति—यौवन में डूबने का आनन्द भी थोड़ा नहीं है।

सरोज—पर उससे उभरने पर मृत्यु का ही तो द्वार मिलता है कान्ति ! वैसे भी मैं यह नहीं जानती, किन्तु जो देखती हूँ उसके सहारे यह सब जान पाई हूँ कि फिर तो हर पतन उत्थान है और हर उत्थान बुर्जुआपन, अप्रगतिशीलता।

कान्ति—मकान का दरवाजा, खिड़कियाँ, वेंटीलेशन इसलिए बनाये गए हैं कि बाहर से फर-फर हवा आए।

सरोज—शायद तूफान को रोकने के लिए उनके बन्द किये जाने की आवश्यकता भी है। खुले आकाश के नीचे तो आदमी सदा नहीं रह सकता ?

कान्ति - किन्तु खुले आकाश के चन्दोए तले हरियाली से लदे, झरनों से कुलकुलाते, फूलों से हँसते मैदान में रहे बिना कोई कैसे जान सकता है कि प्रकृति क्या है, उसके वैभव क्या हैं ?

सरोज--किन्तु तुम मानोगी कि उनमें भी एक नियम है। पहाड़ सारी पृथ्वी पर भर नहीं गए हैं। नदियों ने अपनी उमंग में भर दुनिया को डुबा नहीं दिया है। फूल सारी दुनिया में फैलकर छा नहीं गए हैं। क्या उनमें मर्यादा नहीं है ? यौवन भी एक सामाजिक मर्यादा की अपेक्षा रखता है।

कान्ति—तू मानेगी कि बन्धन और नरक दोनों भाई-भाई हैं।

सरोज—किन्तु स्वर्ग की भी तो एक सीमा है।

कान्ति—सीमा मनुष्य-निर्मित स्वार्थ है।

सरोज—फिर तुम क्या कहती हो, चाहती हो कि यही ठीक है ?

कान्ति—तू क्या कहती है ?

सरोज—वही जो समाज चाहता है।

कान्ति—यानी मैं इसमें विश्वास करती हूँ। गीता को देखा है न ?

सरोज—कुछ न पूछो मुकर्जी और गीता का प्रकरण आज भी कालेज

की दीवारें गुनगुनाती रहती हैं।

कान्ति—तो इसमें क्या बुरा है? जो अधिक-से-अधिक मनुष्य करते हैं उसी से समाज की मर्यादाएँ बनती हैं। इसके अलावा समाज की सीमाओं का निर्माण कुछ आदर्शवादी लोग करते हैं सरोज, जो स्वयं समाज नहीं होते। समाज की सीमाओं का निर्माण कमजोरों के लिए होता है। बलवान् उनका उल्लंघन करके महान् कहलाते हैं। उनके लिए विधि और निषेध के बीच में अपवाद नाम की स्वीकृति बनती है। फिर भी यह मैं नहीं कहना चाहती कि नारी का यह रूप ही ठीक है। मैं तो केवल···

सरोज—यानी तुम मेरी परीक्षा ले रही थीं। मैं नारी के जिस गौरव की बात कहती हूँ वह न जाने क्यों मुझे बुरा नहीं लगता। विश्वास को तो तुम जानती हो?

कान्ति—कौन विश्वास? क्या वह क्रिकेट का खिलाड़ी? हाँ, क्या हुआ?

सरोज—अरे वही! अब मैं तुमसे क्या कहूँ?

कान्ति—हम लोग दूध के धुले नहीं हैं। हाँ, फिर क्या हुआ?

सरोज—तुमसे छिपा भी क्या है? मैं उसकी तरफ आकृष्ट हुई।

कान्ति—स्वाभाविक है, अच्छा फिर?

सरोज—फिर क्या होता? मित्रता बढ़ने पर एक दिन मैंने चाहा कि हम लोग मित्रता के परिणाम पर पहुँचें।

कान्ति—(उछलकर) यानी? (हँसती है।)

सरोज—फिर मैंने ही उसका तिरस्कार कर दिया।

कान्ति—क्यों?

सरोज—पीछे से मालूम हुआ, उसने कई लड़कियों को धोखा दिया और विवाह एक से भी नहीं करना चाहता।

कान्ति—अजीब लोग हैं आजकल के। फिर क्या हुआ? (अन्तस्थ हो जाती है।)

सरोज—फिर क्या होता, बस।

कान्ति—(उठकर सरोज के पास जाकर खड़ी हो जाती है। सरोज मेज़ के पास खड़ी है।) सरोज, फिर तूने कुछ सोचा तो होगा ही। मैं तो इतनी जल्दी ब्याह की बात नहीं सोच रही हूँ। (घूमती है।) ब्याह सचमुच एक बन्धन है। फिर भी मैंने अभी फैसला नहीं किया है।

सरोज—बन्धन होते हुए भी वह एक बड़ा ज़रूरी काम है कान्ति बहन, मैं तो देखती हूँ जब तक ब्याह नहीं हो जाता तब तक लड़कियों को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। मैंने सुना है तुम कैलाश बाबू से···

कान्ति—बिलकुल गलत बात है। मैं ऐसा क्यों करने लगी?

सरोज—(मदभरी आँखों से कान्ति की ओर देखकर मुस्कराती हुई) बुरे तो नहीं हैं।

कान्ति—(भीतर-ही-भीतर बुटन दबाकर उत्सुकतावश) शायद। मेरी माँ एक डिप्टी कलक्टर से मेरा विवाह करने जा रही हैं।

सरोज—डिप्टी कलक्टर से, देखने में सुन्दर भी है न? जिससे दिल न भरे वह आदमी ही क्या? क्यों?

कान्ति—हाँ, बातचीत चल रही है। नौकरी तो नहीं करनी पड़ेगी। आराम से रहेंगे। नौकर-चाकर होंगे। हुकूमत होगी। मैं तो सोचती हूँ जब करना ही है तो क्यों न अच्छे खाते-पीते आदमी से की जाय। क्या खयाल है तुम्हारा?

सरोज—पर तुम तो शादी में विश्वास ही नहीं करतीं।

कान्ति—न करने पर भी गुज़ारा तो नहीं चलता। इसलिए करनी पड़ेगी और क्या? ज़िन्दगी में आराम चाहिए, वह जैसे भी मिले।

सरोज—(घूमकर लौटती हुई) ठीक है। पर हमें न भूल जाना जीजी!

कान्ति—(सरोज के कन्धे पर थपथपाकर) पागल, तेरी भी शादी तो किसी अच्छे से ही होगी न? (सरोज इधर बहुत आने लगी है और कैलाश मनमौजी जीव है। कहीं इसने उस पर तो जाल नहीं फेंका है,

यह जानने की उत्सुकता कान्ति में एकदम जाग उठती है। यही थोड़ी देर सोचकर) क्या सचमुच तूने कालेज के किसी लड़के से शादी करने का फ़ैसला कर लिया है ?

सरोज—नहीं, मैं जानती हूँ कालेज में पढ़ने वाले लड़के बड़े उथले और कच्चे होते हैं—बेपैंदी के लोटे।

कान्ति—बड़ी समझदार है तू !

सरोज—(उत्साहित होकर) पर मैंने फैसला कर लिया है।

कान्ति—(उत्सुकता दबाकर) अच्छा है। खूब सोच-समझकर फ़ैसला करना चाहिए। ज़िन्दगी-भर का मामला है।

सरोज—हाँ, यही बात है। भैया कहते हैं लड़की के पढ़ने-लिखने के बाद उसे खुद अपनी शादी का फैसला करना चाहिए। उन्होंने मुझे छुट्टी दे रखी है। भाभी भी यही चाहती हैं।

कान्ति—होना ही चाहिए। मेरी माँ तो दकियानूसी खयाल की है। इसीलिए मजबूर हूँ। अच्छा, भला तूने कौन चुना है ?

सरोज—तुम एक दिन सुन लोगी और हैरान हो जाओगी।

कान्ति—अगर बताने में कोई हर्ज न हो तो कह डाल न ? बात-चीत तो पक्की हो गई होगी।

सरोज—वे एक तरह से तैयार हैं। जल्दी ही शादी कर लेना चाहते हैं। वे चाहते हैं परीक्षा खत्म होते ही हम लोग घूमने चल दें और वहीं शादी करके हनीमून मनाएँ।

कान्ति—कमाऊ-धमाऊ तो होंगे ही ?

सरोज—हाँ।

कान्ति—देखने-सुनने में।

सरोज—मेरे मन के लायक। पढ़े-लिखे भी खूब हैं। विचार भी ऊँचे।

कान्ति—(तख्त पर बैठकर सिरहाना मोड़ने लगती है, देखती है सरोज की तस्वीर उसके नीचे है। उठाकर देखने लगती है। इधर सरोज

'सोवियत लिटरेचर' के पन्ने उलट रही है। कान्ति तस्वीर को देखकर चौंक उठती है, फिर सरोज की तरफ देखती है।) कैलाश बाबू हैं क्या?

सरोज—(एकदम मुस्कराकर उधर ही देखने लगती है और 'हाँ' कहने जा ही रही थी कि देखती है कि कान्ति तस्वीर की ओर देख रही है। कभी-कभी क्रोध से उसकी साँस फूल उठती है। कान्ति उठ कर खड़ी हो जाती है, तस्वीर को एक तरफ फेंक देती है। क्रोध से उसका चेहरा लाल हो जाता है।) क्या हुआ कान्ति बहन, क्या बात है? मेरी तस्वीर?

कान्ति—(क्रोध से पागल-सी तख्त पर गिर जाती है। सरोज झपटकर तकिया उठाने लगती है ताकि उसके सिरहाने लगा दे कि इसी बीच कान्ति का चित्र उसके हाथ में आ जाता है। वह उसे उठा कर देखती है। कुछ देर तक के लिए वातावरण में दम घुटने लगता है कि इसी बीच) मक्कार, बदमाश। मुझसे धोखा।

सरोज—धोखा कैसा? मैंने क्या धोखा दिया?

कान्ति—(रुआँसी सी होकर) मैं ही अभागिन हूँ सरोज! तेरा अपराध नहीं है।

सरोज—नहीं नहीं, सच बताओ क्या बात है? मेरा दम घुट रहा है।

कान्ति—फ़रेबी, मक्कार है यह कैलाश, लड़कियों को धोखा देने वाला।

सरोज—(परिस्थिति को समझती-सी) तो क्या मैं गलत समझ रही थी?

कान्ति—झूठा, दगाबाज, एक को कुएँ में डालकर अब तुझे गिराना चाहता है।

सरोज—क्या बात है? (दौड़कर) मैं नहीं समझी कान्ति बहन, क्या सचमुच उन्होंने तुम्हें धोखा दिया?

कान्ति—(सिंहनी-सी विकराल बनकर सुध-बुध खो बैठती है

और पेट की तरफ इशारा करके) यह देखती है प्रणय का फल इस महान् कैलाश बाबू का।

सरोज—(चिल्लाकर) बहन !

(कान्ति क्रोध से दाँत पीसती हुई पहले तो मूक खड़ी रहती है। फिर पर्स उठाकर एकदम बाहर निकल जाती है। सरोज आँखें फाड़े देखती रहती है जैसे उसे अपने कानों पर विश्वास नहीं है, अपनी आँखों पर विश्वास नहीं है। वह पीठ फेरकर कुरसी पर बैठी, आँखें फाड़े दीवार की तरफ देखती रहती है कि इसी समय कैलाश अपनी धुन में आता है।) फ़रेबी, मक्कार ?

कैलाश—लेडी डाक्टर तैयार है कान्ति, चलो। (जाकर भूल से सरोज के कन्धे पर हाथ रख देता है।) चलो कान्ति ! (सरोज आँख उठाकर देखती है और खड़ी हो जाती है।) तुम सरोज ? कान्···

सरोज—(खड़े होकर) हाँ, कान्ति चली गई अपने शरीर में तुम्हारा पाप लेकर। मैं भी जा रही हूँ अँधेरा छा जाने से पहले, दम घुटने से पहले। तुम पुरुष···

(झपटकर बाहर चली जाती है। दूसरी तरफ से कैलाश के पिता अपने समवयस्क व्यक्ति के साथ आते हैं। कैलाश, जो अभी तक सँभल नहीं पाया था बिना कुछ कहे केवल खड़ा हो जाता है। दोनों यथा-स्थान बैठ जाते हैं।)

वृद्ध—यह है मेरा कैलाश। यहाँ अंग्रेजी अखबार का प्रधान सम्पादक। बड़ा विद्वान् राजनीतिज्ञ, इसकी कलम का लोहा सभी मानते हैं।

दूसरा—मेरा सौभाग्य है पंडित जी। लो बेटा, जो कन्या मैं तुम्हें दे रहा हूँ यह उसका चित्र है। (चित्र उसके सामने रख देता है। कैलाश इसी बीच सँभल जाता है, परन्तु देखता है कान्ति और सरोज दोनों के चित्र आगन्तुक के पास ही पड़े हैं। वह उठाकर हाथ में लेकर देखने लगता है। वृद्ध वे दो चित्र देखकर) हैं ?

वृद्ध—(परिस्थिति को सँभालते हुए) वे दोनों लड़कियाँ कैलाश को पसन्द नहीं हैं पं० देवनाथ जी। बात यह है कि वह बहुत पढ़ी-लिखी लड़की नहीं चाहता।

दूसरा—मेरी लड़की तो बड़ी भोली है, पंडित जी, वह कुछ भी नहीं जानती।

वृद्ध—मेरा लड़का भी बड़ा भोला है, बड़ा नेक, न उसे संसार का ज्ञान है न छल-फरेब ही जानता है। ऐसा लड़का अगर दिया लेकर ढूँढ़ेंगे तो भी नहीं मिलेगा। समझे!

दूसरा—समझ गया, "ऐसा लड़का दिया लेकर ढूँढ़े भी नहीं मिलेगा।"

वृद्ध—बहुत-सी लड़कियाँ तो हा-हा खाती हैं। पीछा ही नहीं छोड़तीं।

दूसरा—जी, आप ठीक कहते हैं।

वृद्ध—बिलकुल भोला लड़का है। हमेशा खद्दर पहनता है, देश-भक्ति तो रग-रग में भरी है। गाँधी जी को मानता है। चर्खा कातता है। बस इसीसे मैं नाराज हूँ मैं कहता हूँ क्या तुम्हारे इस काम के दिन हैं? पर मानता ही नहीं। क्या कहते हो। अभी दो लड़कियाँ सिर हो रही थीं। जाते-जाते अपनी तसवीर फेंक गईं।

दूसरा—(स्वस्थ होकर) फिर भी मेरी कन्या इन दोनों से बुरी नहीं है। अच्छा चलूँ। जल्दी ही मुहूर्त देखकर टीका कर दूँगा।

वृद्ध—ब्याह इसी फागुन में।

दूसरा—मंजूर है। (वे दोनों निकलने लगते हैं कि कैलाश चैतन्य होता है। वह उठकर कुछ कहने जा ही रहा था कि वे दोनों बाहर निकल जाते हैं।)

कैलाश—पिताजी!

(दूर से आवाज आती है।)

वृद्ध—तू चिन्ता न कर, बाकी बात मैं पक्की कर लूँगा कैलाश!

कैलाश—(चित्र उठाकर फेंक देता है।) बिरजू, बिरजू, एक प्याला चाय ला रे जल्दी।

(तख्त पर बैठ जाता है। हँसने लगता है। हँसता ही रहता है। उसके अट्टहास से सारा कमरा गूँजने लगता है जैसे पागल हो जायगा। घूमता है, दौड़ता है। फिर गुम-सुम होकर तख्त पर गिर पड़ता है।)

वाहरे, कितनी मूर्ख है यह दुनिया।

(पर्दा गिरता है।)

ग्रहदशा

: पात्र :

गिरधारी	दफ्तर का क्लर्क
कृष्णमनोहर	अतिथि
रमा	पत्नी
आगन्तुक	स्त्री (कृष्णमनोहर की पत्नी)
लछमन	लड़का

[एक साधारण गृहस्थ का मकान। रंगमंच पर एक बरामदा १६ × १२ लम्बाई-चौड़ाई। दीवार में पुराने ढंग के छोटे-छोटे दो आले। दोनों के बीच में बिना किवाड़ों की एक आलमारी जिसमें तीन छोटे-छोटे खाने हैं। दीवार पर वैसे कृष्ण, हनुमान, रामचन्द्र जी की तस्वीरें लटक रही हैं। नीचे चटाई पर एक दरी। एक तरफ लोहे की दो कुरसियाँ। दरी के ऊपर मैली-सी चादर और किनारे पर गाव तकिया, वह भी मैला। दरी के कोने पर मकान का मालिक गिरधारीलाल मामूली ढंग की हजामत का सामान रखे हजामत बना रहा है। गिरधारीलाल की उम्र लगभग ३५ दुबला साँवला शरीर, सिर पर गंज, मुँह पर चेचक के दाग। मोटी नाक, भरी हुई दाढ़ी, मूछें। आधी बाँह की बनियान और धोती पहने बैठा गुनगुना रहा है और हजामत बनाता जाता है। सिलबिली आदत के कारण हाथ से साबुन लगाता है और साबुन के झाग से सारे हाथ भर जाते हैं तो धोती से पोंछ लेता है; फिर दाढ़ी रगड़ने लगता है। दाढ़ी पर हाथ से साबुन मलने से खर्र-खर्र की

आवाज़ भी आती है। बरामदे के पूर्वी भाग में एक दरवाज़ा रसोई को जाता है और पश्चिमी भाग में एक दरवाज़ा है जहाँ बाहर से लोग आते हैं। गिरधारीलाल साधारण प्रकृति का जल्दबाज़ आदमी है इसलिए चिल्लाता भी जाता है। आँखें कमजोर होने पर भी इस समय चश्मा नहीं है, इसलिए शीशा बहुत पास रखा है। कभी-कभी हजामत बनाते समय ब्लेड भी लग जाता है तो 'सी' कर उठता है और उस समय गुनगुनाना भूल जाता है। समय सबेरे आठ बजे।]

गिरधारी—(हजामत बनाते हुए चिल्लाकर) अरे, नहाने को गरम पानी रख दिया कि नहीं? साढ़े आठ बज रहे हैं कुछ खबर भी है? रोज़ कहना पड़े है। चाहे हैं गरम पानी की महारनी रोज़-रोज़ रटूँ। कभी इतना गरम कि पानी मिलाते-मिलाते बर्तन भर जाय है, कभी इतना ठण्डा।···(ब्लेड लग जाता है।) सी! न जाने कैसे ब्लेड हैं सुसरे। तेज लाओ तो लग जायँगे, खूनोखून कर देंगे। (खून पोंछता है। फिर हजामत का ही मैल कटी जगह चिपकाता है।) बीस दफे कह दिया पानी ज़रा गरम रखा करो, हजामत के लिए। पर कोई सुने तब न? भौंकते रहो। (दूसरी आवाज़ रसोई घर से आ रही है पत्नी की।)

रमा—कुछ-न-कुछ बोलना हो तो दूसरी बात है। हज़ार दफे कह दिया पानी गुसलखाने में रखा है, रखा है। चिल्लाने की क्या जरूरत है? आदत ही पड़ गई है चिल्लाने की तो चिल्लाओ। मैं भी कहाँ तक करूँ मरी। लड़की पढ़ा लो या घर का काम करा लो। ये तो नहीं, बड़ी हो गई तो ब्याह की सोचें। कोई लड़का ढूँढ़कर हाथ पीले कर दें। सो नहीं होगा, आठ बजे खाट से उठेंगे नहा-धोकर दफ्तर चले जायँगे। मुझे तो मौत भी नहीं आवे है। (आवाज आती रहती है।)

गिरधारी—बस, जरा कुछ कहो तो पुराना रोना ले बैठेंगी। मैं कह रहा हूँ। और मैं कह ही क्या रहा हूँ पानी की ही बात तो कही है। कोई गुनाह तो नहीं कर दिया, किसी की जान तो नहीं ले ली। लड़की पढ़ती है तो बुराई क्या है? आजकल कौन है जो अपने बच्चों को नहीं पढ़ाता?

रमा—पढ़ाने को पढ़ाओ, नौकरी कराओ, बाहर घुमाओ पर ब्याह भी तो कर दो। इतनी बड़ी लड़की घर में बैठी है। न जाने नींद कैसे आवे है!

गिरधारी—नींद कहाँ आती है? बारह बजे तक दोस्त-मित्र नहीं छोड़ते। सवेरे तुम कान पर भोंपू बजाने लगती हो। उठो-उठो के मारे परेशानी में जान है। जैसे मैं ही अकेला उठने को रह गया हूँ। न आप सोवेंगी न बच्चों को सोने देंगी और मुझसे तो जैसे पुरानी दुश्मनी है। ब्याह क्या किया आफत मोल ले ली है।

रमा—(उसी तेज़ी में) हाँ हाँ, मैं ही तुम्हारी सत्रु हूँ। मैं ही दुश्मन हूँ। जहर लाकर क्यों नहीं दे देते। मर जाऊँ पाप कटे। (**एकदम रोने की आवाज़ बोलते हुए सुनाई पड़ती है।**) भला कहो बुरा होय है, नेकी करो बदी होय है। कहती हूँ सवेरे उठा करो तो आठ बजे उठेंगे। रात को जल्दी सोया करो। इन मरे लफंगों में बैठने से फायदा क्या? नहीं मानेंगे अपने मन की करेंगे। ही ही ही···

गिरधारी—अरे, तो मैंने क्या कहा है? रोने की क्या जरूरत है भाई! अच्छा, अब से कसम खाई जो कुछ कहूँ। बस, (**इसी समय अखबार वाला आता है।**) अखबार वाले भाई, यह कोई वक्त है अखबार का? पहले से लाते तो कुछ पढ़ते भी। ले जाओ, अब नहीं लेंगे।

अखबारवाला—बाबूजी देर हो गई। सवेरे तो आपका दरवाजा बन्द रहता है, लेटरबक्स का दरवाजा टूटा है।

गिरधारी—(**क्रोध में**) दरवाजा बन्द रहता है तो खिड़की में डाल देते। लेटरबक्स है तो उसमें डाल देते। टूटा है तो क्या है? टूटा रहने दो, (**चुप रहता है।**) खैर, दे जाओ। आगे से ध्यान रखना। (**तेज़ होकर**) हाँ, देखना, कल देर से लाओ तो मत लाना। चाहे ले आना। मैं नहीं पढ़ता तो साधना तो पढ़ती है। दे जाना। सवेरे ही चली जाती है पढ़ने। जैसे इन कालेज वालों को रात को नींद न आती हो। (**हड़बड़ी में हजामत का सामान बटोरता है, इसी समय एक स्त्री आती है, गिरधारी चश्मा न**

होने के कारण ठीक-ठीक नहीं पहचान पाता। स्त्री की आयु पैंतीस से ऊपर, सफेद धोती, ऊपर से चादर ओढ़े) कौन, कौन है? (आँखें फाड़कर) आइये, आइये।

स्त्री—मैं साधना के लिए आई हूँ।

गिरधारी—(खड़ा होकर) साधना के लिए? क्या मतलब? वह तो कालेज चली गई।

स्त्री—राम मनोहर है न?

गिरधारी—(दौड़कर अलमारी में से चश्मा निकालकर लगाता हुआ) ओह आप हैं! धन्य भाग हमारे। राम मनोहर बाबू के लिए। तो सुनिए, साधना तो आप की ही है। ऐसे भाग कहाँ!

स्त्री—ज़िद पकड़ रहा है, ब्याह करूँगा तो साधना से। दोनों एक ही कालेज में हैं न!

गिरधारी—हाँ हाँ, राम मनोहर तो हमारे ही हैं। ऊँचा खानदान। कुलीन घर। भला इसमें भी कोई कहने की बात है? पक्की है। घर में बात कर लो। मैं आया। सुनती हो (ऊँची आवाज़ में) देखो, ये राम-मनोहर बाबू की माँ हमारे घर पधारी हैं। देर हो रही है···ही-ही, दफ़्तर को। (गिरधारी चला जाता है। उसकी पत्नी आती है। गिरधारी की पत्नी मोटी धोती पहने, रंग गेहुँआ, नाक-आँख बड़ी।)

रमा—अरे, अरे, आप हैं। बैठो बैठो, बड़े भाग, भगवान् घर आये। हम ग़रीब तुम्हारे ही आसरे रहे हैं।

स्त्री—नहीं नहीं, ऐसा क्यों कहो हो। बड़े तो तुम्हीं हो। हमीं ग़रीब हैं भाई।

रमा—नहीं नहीं, लो बैठ जाओ, (अपने हाथ से दरी ठीक करके) लो बैठो। कहो, सब अच्छे तो हैं? सुना, भैया के बाबू बाहर गए थे? हमारी जात में तो एक ही घर है तुम्हारा। इत्ता ऊँचा, इत्ता बड़ा।

स्त्री—नहीं बहन, तुम्हारा भी घर बहुत बड़ा है। मैंने तुम्हारे सास-ससुर देखे हैं, राज करें थे राज। पचासों नौकर-चाकर बाहर खड़े रैवें थे।

जिधर को आँख उठ गई उधर ही हुकम हो गया। लोग उनकी बातों को सिर आँखों पर लेवें थे। खानदान ही तो देखा जाय हैगा।

रमा—तुम्हारे ही कौन कमी थी बहन, हाथी झूमे थे हाथी। बड़े-बड़े अफ़सर हाथ जोड़े खड़े रेवें थे। और वो उनकी तरफ देखें भी नाय थे। सुना है एक बार कलट्टर साब आये तो तुम्हारे ही हियाँ ठहरे। बोले रहूँगा तो म्हई।

स्त्री—हाँ, तुम्हारा वह घर थोड़े ही था। तुम तो सब छुते में रहो थे। इत्ती बड़ी हवेली, पाँच सौ आदमी आ जायँ। दो दरबान तो हर वखत हाजिरी देवें थे—बन्दूक ताने। मैंने वे दिन देखे हैं, तुम लोग तो राजा थे राजा।

रमा—दिनों का फेर है। नहीं तो तुम्हारे घर से कभी कोई खाली हाथ गया है भला? जो माँगो सो मिले था। जो कैवें थे वो होय था। पचासों हाथ बाँधे खड़े रवें थे।

स्त्री—इसीलिए···इसीलिए तो बहन, तुम जानो दिनों का फेर है। बिगड़ गई सो बिगड़ गई। करज क्या थोड़ा लिया? हमारे ही घर से करज लिया और देते वखत।

रमा—मैंने तो सुना करज तुम्हारे ही घर वालों ने हमारे यहाँ से लिया था।

स्त्री—झूठ बिलकुल झूठ। करज तुम्हारे ही घर वालों ने लिया था। नहीं तो बिगड़ती ही क्यों। तीन पुस्त से हमारी तुम्हारी लड़ाई इसी बात पर तो है कि करज लौटाया नहीं। ब्याज नहीं दिया।

रमा—मैं वे नहीं मानती, करज तुम्हारे घर वालों ने लिया था हमारे घर से। उन्होंने ही नहीं लौटाया, नहीं तो बिगड़ती ही क्यों?

स्त्री—करज चाहे जिसने चाहे जिससे लिया हो, बेईमान तो तुम्हारे ही घर वाले थे। नहीं तो बिगड़ती ही क्यों?

रमा—मैं मान नहीं सकती। बेईमान तो तुम्हारे ही घर वाले थे, तुम्हारे। जब मकान बिके, जायदाद कुड़क हुई तो नाक उन्हीं की कटी। वे

ही मारे-मारे फिरे।

स्त्री—(तुनककर) और जेलखाना किसके घर वालों को हुआ था रानी, साफ़-साफ़ ही कहलवाओगी !

रमा—और बाज़ार में बेइज़्ज़त कौन हुआ था। घर का सामान किसका बिका था ? मेरा मुँह न खुलवाओ सवेरे-सवेरे।

स्त्री—(और भी तेज़ होकर) बेइज़्ज़त होंगे तुम्हारे घर वाले। यहाँ जूते खाने का नाम न लेना मुँह नोंच लूँगी। हाँ, नहीं तो, हम किसी के दबेल नहीं रबै हैंगे। जूते पड़े थे उनके तो।

रमा—तुम्हारे घर वालों के, तुम्हारे घर वालों के, मेरे घर वालों के क्यों पड़ते। बहुत मत बकना, टाँग तोड़ दूँगी ?

स्त्री—(खड़ी होकर) तू मेरी टाँग तोड़ेगी ?

रमा—(खड़ी होकर) तू मेरा मुँह नोंचेगी ?

स्त्री—नहीं, तू मेरी टाँग तोड़ेगी।

रमा—नहीं, तू मेरा मुँह नोंचेगी।

स्त्री—और तू मेरा मुँह नोंचेगी ? खबरदार !

रमा—तू होगी, खबरदार !

स्त्री—तू होगी !

रमा—तू !

स्त्री—तू !

रमा—तू, तू !

स्त्री—तू तू तू तू। और कह। घर बुलाके बेइज्जती करे है। (दोनों थोड़ी देर तक चुप रहती हैं।)

रमा—मैंने कब घर बुलाया ? मैंने क्या बेइज्जती की ? मैंने तो कुछ नहीं कहा। 'मैंने तो कहा 'आई हो तो बैठो। बड़ी मेहरबानी है। हमारे भाग खुले।'

स्त्री—तो मैं भी इसीलिए आई। अच्छा घर है यहाँ ठीक रहेगा, लड़का माने ही नहीं है। पर नहीं, अब नहीं। (तुनककर) मैं जाऊँगी।

रमा—(चौकन्नी होकर) क्या नहीं माने है ? (बिना पूरी समझे हो) ये तो तुम्हारा ही घर है। जाओगी क्यों, बैठो। क्या खातर करूँ। शरबत पियो। गरमी के दिन हैं। गरमी भी क्या सड़ी पड़े है। (बैठ जाती है।)

स्त्री—(बैठकर) कुछ न पूछो। भुने जाय हैंगे। तुम्हारा मकान कुछ जादा गरम है। छोटा है न !

रमा—मकान तो तुम्हारा भी कोई बहुत बड़ा नहीं है।

स्त्री—इससे तो बड़ा है। बड़े-बड़े कमरे, दल्लान, तिदरी, गुसल-खाना, रसोई, आँगन, बैठक।

रमा—इसके पीछे के कमरे भी बड़े हैं। इसी दल्लान में चार खाटें बिछ जाय हैं। रसोई ऐसी कि दस आदमी बैठकर खा लें। बड़े लड़के का ब्याह यहीं हुआ। जापे, दछौन, मूँडन, सब यहीं हुए।

स्त्री—फिर भी घर तो हमारा ही बड़ा है। तुम्हारे घर उतना बड़ा एक भी कमरा नहीं है।

रमा—वह कोई मकान है ? उसमें तो भंगी भी न रहें।

स्त्री—और इसमें कोई थूके भी नहीं। मेरे घर के पाखाने-जैसी तो कोठरियाँ हैं।

रमा—तुम्हारा भी कोई घर है, घूर है घूर। दीवारें ऐसी जैसे कागज के ताजिए। फर्श ऐसा जैसी गाँव की कीचड़-भरी गली, कीड़े बिलबिलाय हैंगे जहाँ-तहाँ। न जाने कैसे रहो हो तुम लोग ? जैसा खानदान वैसा घर !

स्त्री—हमने रुपया किसी का नहीं मारा है, बाजार में जूते नहीं खाए हैं।

रमा—जूते खाए होंगे तुम्हारे घरवालों ने। मुँह संभालकर बातें करना। हम क्यों किसी का रुपया मारते। सबेरे-सबेरे···आई है गाली देने।

स्त्री—मैं क्यों गाली देती ? मैं तो साफ कहे हूँ।

रमा—मैं भी साफ कहे हूँ। किसी को बुरी लगे चाहे भली।

स्त्री—(अँगूठा दिखाकर) अरे तो तुम्हारी बात ही कौन सुने है ?

रमा—(वैसे ही अँगूठा दिखाकर) और तुम्हारी ही कौन सुने है ? भौंकती फिरो।

स्त्री—(हाथ मारकर) तू भौंक।

रमा—तू भौंक। चली वहाँ से ?

स्त्री—तू तू !

रमा—तू तू तू तू !

स्त्री—(घबराकर सिर पकड़ लेती है जैसे गश आ गया हो फिर जमीन पर हाथ रखकर हाय पानी, मैं मरी। पानी दो, घूँट पानी, गला सूख रहा है। न जाने किस घड़ी मैं घर से निकली। पानी !)

रमा—मैं पानी लाती हूँ। (उठती है।)

स्त्री—नहीं, रहने दो, मैं चली। मैं जाऊँगी। (उठती है।) मैं यहाँ का पानी नहीं पी सकती। हाय राम, तू मुझे उठा क्यों नहीं लेता। (उठती हुई बड़बड़ाती है) राम मनोहर का मैं···

रमा—(चिल्लाकर) पानी पीकर जाओ ना, तुम्हें मेरी कसम, सुनो तो। सुनो तो, राम मनोहर का क्या ? बड़ा अच्छा लड़का है। सुनो ती जीजी तुम्हें मेरी कसम।

स्त्री—नहीं, हमारे घर वालों के जूते पड़े थे। बाजार में बेइज़्ज़ती हुई। तुम्हारा रुपया मार लिया। हम तो चोर हैं न ?

रमा—कौन कहे है ? हमीं चोर हैं। हमारे ही बुजरग ऐसे थे। लो बैठ जाओ न। मैं पानी ला रही हूँ। तुम्हें मेरी कसम।

स्त्री—कसम न धराओ। मैं जाऊँगी। मैं और जगह कर लूँगी।

रमा—नहीं, हमारे ही बुजुरग बेइज़्ज़त हुए। उनकी कुरकी हुई।

(पति का प्रवेश उधर वह स्त्री भी लौटती है।)

गिरधारी—कौन कहता है कि हमारे बुजुरग बेइज़्ज़त हुए। मैं उसकी जीभ खींच लूँगा। मैं सब सह सकता हूँ बुजुरगों की बेइज़्ज़ती नहीं सह सकता। उनका पीछा है। वे बहुत बड़े थे। बड़ा नाम था। महल थे महल। नौकर तो इतने थे जितनी चौमासे में मक्खियाँ।

रमा—(इशारे से पति को समझाती है। पर चश्मा न होने से वह समझ कुछ भी नहीं पाता, बल्कि पत्नी की बात सुनकर नाराज हो उठता है।) चलो जाने दो, हमीं छोटे थे। हमारे ही बुजुर्गों की बीच बाजार में बेइज्जती हुई। मान लो। हाँ, लो अब कहो।

गिरधारी—(कड़ककर) क्यों मान लें? मैं नहीं मान सकता। जरा भी नहीं। वह घेर वाली जमीन अभी तक हमारी है। मैं उसे लेकर छोड़ूँगा। समझा क्या है!

स्त्री—(लौटती हुई) घेर वाली जमीन तो हमारी है। उसे कोई कैसे ले सके है? सिर न फूट जायँगे।

गिरधारी—(एक कदम आगे बढ़कर) वे लोग एक का सिर फोड़ेंगे, मैं सबके सिर फोड़ दूँगा। मैं एक-एक को देख लूँगा, एक-एक को। समझा क्या है?

रमा—चलो जाने भी दो, चुप भी करो···राम मनोहर···

स्त्री—आज तक तो सिर फूटा नहीं, सिर तोड़ने वाले जेलों में रखे हैं जेलों में।

(चली जाती है।)

रमा—मैं कहूँ हूँ, तुम बोलते क्यों जाओ हो। चुप भी करो अब। वे आई हैं साधना के लिए बातें करने। (चिल्लाकर) हमीं छोटे हैं सुनो बहन, सुनो तो। हमीं छोटे हैं। चली गई? हाय·····(सिर पकड़ लेती है।)

गिरधारी—(लौटकर) गलती हो गई। पर वह बात ही क्यों उठी?

रमा—बात क्यों उठी? मुझे क्या मालूम था किसलिए आई है। वह तो पीछे से पता लगा, उससे पहले तो···

गिरधारी—उससे पहले क्या?

रमा—बातों-बातों में उन्होंने मेरे घरवालों की बुराई की। उन्हें चोर-बेईमान बताया।

गिरधारी—(तमककर) और तू सुनती रही। (क्रोध में भर जाता है।)

रमा—मैंने भी खूब खरी खोटी सुनाई। तभी तो लड़ाई हुई।

गिरधारी—पर लड़का अच्छा है।

रमा—मैं तभी तो कह रही हूँ। मैंने ऐसा क्यों कहा। कह लेती वह दो बातें और मैं सुन लेती।

गिरधारी—मुझे याद ही नहीं रही कहने की। मेरा ही कसूर है। (हताश भाव से) अब क्या हो?

रमा—पर जब तुम्हें मालूम था कि राम मनोहर की माँ इसलिए आई है फिर नहा के आते ही क्यों लड़ पड़े?

गिरधारी—यही तो मुझ में ऐब है? मैं भूल जाता हूँ।

रमा—और यही मुझमें ऐब है। मैं किसी की धौंस नहीं सह सकती। मैं किसी की दबेल नहीं हूँ।

गिरधारी—(सोचकर) फिर अब क्या किया जाय, कैसे बात बने? लड़की है तो दो बातें सुननी पड़ेंगी। अब अगर वह आ जाय तो मैं इतनी तारीफ़ करूँ कि···

रमा—पर अब तो मैं तैयार हूँ। अब चाहे कोई दस गा लीदे ले मैं बोल जाऊँ तो मेरे मुँह पर थूक देना।

गिरधारी—पर बात तो तूने बिगाड़ दी। सारा खेल खराब कर दिया।

रमा—तुम भी तो लड़ पड़े। इतना भी खयाल नहीं किया कि कौन है, क्या है, क्यों आई है? जाओ बुला लाओ न। जाओ। बात पक्की हो जाय तो अगले महीने·····

गिरधारी—हाँ, अगले महीने। छुट्टी ले लूँगा। काम ही कितना है। और हो भी तो क्या? बड़ा बुरा हुआ। (सिर पकड़कर घूमता है। कोई आवाज़ लगाता है।) देखो कौन है?

रमा—तुम्हीं देखो।

आगन्तुक—अरे, बाबू गिरधारीलाल हैं क्या?

गिरधारी—आइए आइए, बाबू कृष्ण मनोहर, ओह, बड़े भाग। (पत्नी दौड़कर दरी ठीक करती है। कृष्ण मनोहर बैठ जाते हैं।) आप महान् हैं। देवता पुरुष। और हम तो बिलकुल तुच्छ आपके नौकरों के नौकर। कहिए जल लाऊँ ?

रमा—मैं जलपान ला रही हूँ। आपकी कृपा है। मैं·····

गिरधारी—मैं आपका दास हूँ। चरण-सेवक। (पैर पकड़ने को आगे बढ़ता है।)

कृष्ण मनोहर—(पीछे हटकर) नहीं, ऐसा क्यों कर रहे हैं ? हम-आप कोई दो थोड़े ही हैं !

गिरधारी—दो क्यों नहीं हैं ? आप मालिक हैं मैं तो आपके खानदान का नौकर रहा हूँ। मेरे बुजुर्ग आपके यहाँ नौकर रहते रहे हैं। हम लोग बहुत ही छोटे हैं आपके टुकड़ों पर पलने वाले। बड़ी कृपा की आपने। मेरा घर पवित्र हो गया। (स्त्री से) जरा जल्दी करो।

कृष्ण मनोहर—आप ऐसा क्यों कह रहे हैं ? मेरे बुजुर्गों ने न कभी किसी को नौकर रखा न उनकी हैसियत ही ऐसी थी। हम लोग मामूली आदमी रहे हैं। हाँ तो·····

गिरधारी—नहीं, पहले आपको यह मान लेना होगा कि आपके बड़े-बूढ़े बहुत बड़े आदमी थे। उनके यहाँ हाथी झूमते थे। नौकर ऐसे रहते थे उनके आसपास जैसे गुड़ के चारों ओर ततय्ये, और हम लोग उनके यहाँ नौकर थे। यानी मेरे बड़े-बूढ़े उनके आसरे पलते थे।

कृष्ण मनोहर—(परेशान-सा होकर) होगा बाबू गिरधारीलाल, इसमें क्या बड़ी बात है मुझे तो याद नहीं आता। मैंने बचपन से ही अपने को बहुत मामूली आदमी पाया है। रोज कुँआ खोदना और रोज पानी पीना। अब लड़के पढ़ रहे हैं। उन्हीं का खर्च नहीं सँभाल पाता।

गिरधारी—यह तो आपकी महत्ता है, जो आप अपने को वैसा मानते हैं। नहीं तो मेरे बुजुर्ग कहा करते थे आप लोग इस मोहल्ले के राजा थे। बड़ी-बड़ी हवेलियाँ, बड़े-बड़े मकान, दीवानखाने, कचहरियाँ थीं।

रुपया गाड़ियों पर लादकर ले जाया जाता था। सिपाही साथ चलते थे। गारद रहती थी गारद। कोई देख तो जाय उनकी तरफ, खोदकर न गाड़ दें।

(पत्नी जलपान लेकर आती है, सामने रख देती है।)

रमा—यह भी कोई कहने की बात है। सारा सहर उन्हें माने था, सारे सैर में उनका रौब था। बाहर निकलें थे तो सलाम करने वालों की कतारें खड़ी रेवै थीं। हमारे बुजुरग लोग उनके पीछे-पीछे चलें थे।

कृष्ण मनोहर—आप लोगों को न मालूम कहाँ से ये बातें मालूम हो गईं। मुझे तो·····

गिरधारी—अब भी सरकारी गजेटियर में उनका जिक्र है। कलक्टर साहब के बंगले पर इसका कभी जिक्र होता है। लोग सुनते हैं तो सिर झुका लेते हैं। उस दिन एक बड़े मियाँ कह रहे थे कि एक बार लार्ड डलहौजी शहर में आये तो सबसे पहले उन्हें ही बुलाया। उनसे ही हाथ मिलाये और उन्हीं के घर जाकर खाना खाया। ऐसे थे वे लोग। लीजिए खाइये!

कृष्ण मनोहर—(लापरवाही और घबराहट के साथ खाता हुआ) हाँ, अब तो रहने को गत का मकान भी नहीं है। ऊपर का कमरा अब गिरा, अब गिरा हो रहा है। सोचता हूँ मरम्मत करा लूँ, पर पाँच सौ का खर्च है। तनखा मिलती है दो सौ बीस। आठ प्राणी, कहाँ से आवे, पेट को भी पूरा नहीं पड़ता। हाँ·····

रमा—(घूँघट में) अभी बहन जी कह रहीं थीं और कह क्या रही थीं मैंने क्या नहीं सुना? सैर में कोई भी ऐसा नहीं था जिस पै दो-चार हजार का करज न हो। चाय और दो न!

कृष्ण मनोहर—(चुपचाप खाता हुआ सोचता है। आखिर यह सब क्या है, क्यों इतनी ये लोग बेतुकी हाँक रहे हैं। बार-बार सोचता है, कुछ समझ में नहीं आता। फिर यह सोचता है कि कहीं ये मेरा मजाक तो नहीं उड़ा रहे। फिर सोचता है बातों से तो ऐसा नहीं लगता। आज बहुत दिनों बाद इधर आया हूँ। शायद इन लोगों को पत्नी ने आकर कहा

हो, शायद हमारे बुजुर्ग ऐसे हों। इन्हें कोई वैसा प्रमाण मिला हो।) पर आपको इन सब बातों का पता कैसे हुआ, मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम ?

गिरधारी—पूछने के लिए दूर जाने की जरूरत नहीं है। ऐसा कौन है बूढ़ा जो यह नहीं जानता। और आपका खानदान लाखों में एक।

रमा—औरतें तो देवी थीं देवी। साक्षात् लछमी। देखो तो लगे था अभी सुरग से उतरी हों।

गिरधारी—ये थोड़ा हलुवा लीजिए न, (देता है।) हम क्या हैं गरीब मरभुखे, रोज कमाना, रोज खाना। जिन्दगी किसी तरह कटी जाय है। लड़की पढ़ रही है बी० ए० में। गौ है गौ।

रमा—सिवा पढ़ने के और कोई काम ही नहीं है। मैं कहूँ अरी, फिर पढ़ियो खाना तो खाले। मजाल है खाना खा जाय। पढ़ती रहेगी। दिन हो चाहें रात।

गिरधारी—मैं कहता हूँ ऐसी लड़की मैंने नहीं देखी। न उसे दीन की खबर है न दुनियाँ की। न कपड़ों का ध्यान है न खाने का।

कृष्ण मनोहर—तो उसे सिखाइए। कल को पराए घर जायगी तो···

रमा—सीखने को सब सीखी है—बुनना, काढ़ना, सीमना।

गिरधारी—नहीं साहब, पढ़ने के सिवाय और उसे कोई ध्यान नहीं रहता। फर्स्ट आई पिछले इम्तहान में। मैं कहता हूँ उसे घर का काम भी कराओ। उसे पराए घर जाना है।

रमा—तुम्हीं नहीं करने देते। (हाथ मटकाकर) पढ़ो बेटी, पढ़ो बेटी, हर बखत करते रहेंगे। हाथ न मैले हो जायँ लड़की के। बर्तन तक माँजने उसे आते नहीं हैं।

कृष्ण मनोहर—(गिरधारी से) यह तो बुरी बात है सभी कुछ आना चाहिए उसे। सभी कुछ सीखना चाहिए। न जाने कब कैसी जरूरत पड़ जाय!

गिरधारी—पक्की हो जाय तो मैं उसे बरतन माँजना सिखा दूँगा। और आजकल पढ़ी-लिखी बरतन माँजे ही कौन है ? हमारे दफ्तर में एक नये बाबू

आए हैं पिछले महीने से। होटल से रोटी आती है दोनों वक्त? बरतन चौके का झगड़ा ही नहीं रखा उन्होंने। हर समय साफ-सुथरे। इतवार के दिन होटल में जाकर खा आए बाकी दिनों थाली बराबर आती है।

रमा—हाय मेरे राम, फिर दिन-भर क्या करती होगी वह औरत? पड़े-पड़े तो दिन भी नहीं कटे है।

गिरधारी—उपन्यास पढ़ती है, रेडियो सुनती है। इस मकान से उस मकान में, इस घर से उस घर में। न हुआ दो औरतें मिलीं और बाजार घूम आईं। बाजार में चाट खा ली, मिठाई खा ली और शाम तक घर लौट आईं। ऐसे बहुत परिवार हैं जिनके घर होटल हैं।

रमा—फिर उनका घर तो मुसाफिरखाना होगा, घर थोड़े ही होगा। ऐसे घर परिवार नहीं कहलाते।

गिरधारी—परिवार कहलाएँ या न कहलाएँ। ऐसे घर हैं और ऐसी औरतें हैं जिन्हें बिना सींग के पशु की तरह बाजार में चरते कभी देख लो। लेकिन बाबू कृष्ण मनोहर मेरी लड़की ऐसी नहीं है।

कृष्ण मनोहर—मैं चाहता हूँ ऐसी न हो। परिवार की भी एक मर्यादा है। एक शोभा है।

गिरधारी—सो तो है ही, सो तो है ही। जैसा आप कहते हैं वैसा ही है।

कृष्ण मनोहर—क्या! मैं क्या कहता हूँ?

गिरधारी—(सकपकाकर) मेरा मतलब···(अपनी पूर्व प्रकृति में आ जाता है) आप क्या कहते हैं हम क्या जानें? यह तो आप ही जानें।

कृष्ण मनोहर—मेरा मतलब है लड़की की आदत कैसी है?

गिरधारी—(तुनककर) जैसी लड़कियों की आदत होती है वैसी है।

रमा—(पति के चुटकी काटती है।) लड़की की आदत बहुत अच्छी है। गौ है गौ।

गिरधारी—गौ भी सींग वाली। किसी की धौंस नहीं सह सकती। जैसे मैं किसी से दबता नहीं हूँ। साफ़ बात कहता हूँ मैं तो।

कृष्ण मनोहर—ठीक है साफ़ ही कहना चाहिए। कितनी उम्र है ?

रमा—(जल्दी में) सोलह साल की।

कृष्ण मनोहर—सोलह साल की, क्या कहा ? बी० ए० में सोलह साल की कैसे हो सकती है ? क्या दो साल की पढ़ने बैठ गई थी ?

गिरधारी—(पत्नी से) सच क्यों नहीं कहती ? बाईस साल की है।

रमा—(टोककर) कहाँ है बाईस साल की। तुम तो झूठ कहो हो। जादा-से-जादा बीस साल की होगी।

कृष्ण मनोहर—हूँ, खैर !

गिरधारी—अरे साहब, जन्मपत्री मिला लीजिए।

कृष्ण मनोहर—जन्मपत्री पीछे देखी जायगी। कोई रोग ?

रमा—रोग क्या होता ? तन्दुरुस्त है।

गिरधारी—मैं तो सच कहता हूँ।

कृष्ण मनोहर—हाँ, सच ही कहना चाहिए। जन्म-भर का सवाल है। मेरे लड़के की आप डाक्टरी करा सकते हैं। सब तरह से ठीक है। अगर उसमें कोई भी कसूर होता तो मैं उसे जन्म-भर क्वारा रखना पसन्द करता। हाँ, तो क्या है···

गिरधारी—जब आप राम मनोहर की बाबत सब सच ही कह रहे हैं तो···मैं भी सच कहता हूँ कि पिछले दिनों उसे 'प्लूरिसी' हो गई थी। पर अब ठीक है।

रमा—कहाँ हुई थी प्लूरिसी ? न जाने क्या कैबे हैं उस मरी बीमारी को। पर उससे क्या, तुम जानो बुखार न आया प्लूरिसी हो गई। आखिर ऐसा कौन है जिसे कोई-न-कोई बीमारी न होती हो या न हुई हो।

कृष्ण मनोहर—पर प्लूरिसी तो भयंकर बीमारी है गिरधारी लाल भाई। प्लूरिसी की आगे की स्टेज है तपेदिक।

गिरधारी—सच ही कहलवाना चाहते हो तो उसे 'प्लूरिसी' नहीं 'अस्थमा' हुआ था।

रमा—यह क्या होता है ?

कृष्ण मनोहर—'अस्थमा'? क्या सचमुच! तब तो···

गिरधारी—नहीं साहब, मैं भी बड़ा भुलक्कड़ हूँ। बात असल में यह है उसे कभी कोई बीमारी हुई ही नहीं।

रमा—हाँ, यों कहो। मुझसे कसम ले लो जो उसे कभी बुखार भी आया हो। लड़की के सिर पर हाथ रखकर कह सकूँ हूँ।

कृष्ण मनोहर—खैर, ऐसी कोई बात नहीं है। अच्छा साहब, शादी··· पर आपने 'प्लूरिसी' क्यों कहा?

गिरधारी—बात यह है मेरे एक मित्र की लड़की को प्लूरिसी हो गई। अब ठीक भी हो रही है। मैंने कहा, मनुष्य है तो कुछ बीमारी तो होगी ही कभी-न-कभी। इसीलिए मैंने अनजान में 'प्लूरिसी' कह दी। मुझे क्या मालूम वह ऐसी कोई भयंकर बीमारी होती है।

कृष्ण मनोहर—और 'अस्थमा!'

गिरधारी—बीमारी के कुछ अंग्रेजी नाम तो आने ही चाहिएँ, इसी-लिए कह दिया। वैसे सच पूछो तो···

कृष्ण मनोहर—क्या? कहिए न! (हँसकर) तो आप सिर्फ यहाँ अंग्रेजी का पाण्डित्य दिखा रहे थे। और कोई अवगुण तो नहीं है कन्या में? वैसे आप चाहें मेरे लड़के को देख सकते हैं, उसका डाक्टरी मुआयना करा सकते हैं! आचार-विचार, शील, सौजन्य सभी-कुछ जान सकते हैं।

गिरधारी—लड़का हीरा है मैं उसे रोज ही देखता हूँ।

रमा—और लड़की अँगूठी।

(सब हँसते हैं।)

कृष्ण मनोहर—तो बात पक्की रही।

रमा—तुम्हारा भला हो, तुमने तो हमें तार दिया।

गिरधारी—(खुश होकर) अरे, ऊँचा खानदान कहीं छिपे है? मैंने कहा था। इनके घर में हाथी झूमे थे हाथी। और आदमी तो इतने नौकर थे जैसे एक फौज हो। सचमुच। मकान, महल, बैठक, दीवानखाना, कचहरी, सभी-कुछ था। मुझे तार दिया कृष्ण मोहन बाबू, आपने। फिर कब?

कृष्ण मनोहर—बस, अगले सालिगों में। मैं न दान माँगता हूँ न दहेज, न मोटर, न बंगला। जो-कुछ पुजे लड़की को दे देना। मैं गरीब हूँ तो दूसरे की गरीबी को भी जानता हूँ। बहुत आदमी न होंगे। यही थोड़े से दस आदमी लाऊँगा। सुबह बरात के लोग आवेंगे, ब्याह होगा, खाना खावेंगे और शाम को विदा।

रमा—नहीं, ऐसा भी क्या। दो दिन तो कम-से-कम बरात रहेगी ही। हम भी तुम जानो ग़रीब हैं तो क्या कुछ अपना मान रखे हैं ही।

गिरधारी—नहीं, मैं तो जो वे कहेंगे करूँगा। बरात एक दिन रखना चाहेंगे तो एक दिन रहेगी, दो दिन चाहेंगे तो दो दिन। अरे लछमन, पान तो ला। सिगरेट ले आ दौड़कर। लछमन ओ लछमन बेटा!

(लछमन चिल्लाता आता है।)

लछमन—बाबूजी, बाबूजी!

गिरधारी—लछमन, देख बेटा, दौड़ के एक पान और एक सिगरेट ले आ। उस पानवाले मोती से कहियो झट-से दे दे। कैसा खाते हैं आप पान, मीठा या सिर्फ कत्था-चूना-सुपारी? और एक सिगरेट। तमाखू तो आप नहीं खाते। मैं तो साहब खाने लगा हूँ। दाँतों में दर्द रहे था। एक ने बताया तमाखू खाया करो। बस, तभी से खाने लगा। ले आ जल्दी। कहियो पैसे फिर दे देंगे।

लछमन—वह नहीं देता उधार, कहता है पहले पैसे लाओ।

रमा—अरे, तो पैसे दे दो। ले मैं देती हूँ। कौन से पैसे हैं उसके।

गिरधारी—बकता है साला, कोई भी उसका पैसा नहीं है।

लछमन—हैं कैसे नहीं? उस दिन पान, दो सिगरेट मँगाई थीं उसी के पैसे नहीं दिये।

गिरधारी—तो दे देंगे, वे भी दे देंगे। जा ले आ। (कृष्ण मनोहर के सामने) ये दुकानदार भी बड़े कमीने हैं। अव्वल तो कोई पैसा है नहीं और हो भी तो क्या माँगना चाहिए? मैं देखूँगा। आज साले को ठीक न किया तो मेरा नाम गिरधारी नहीं। तू मोड़ पर बैठे चिरंजी पनवाड़ी से

ले आ। मत जा उसके पास।

रमा—तो उसके पैसे क्यों नहीं दे देते। लो दे दो।

गिरधारी—बस, तू मत बोल, मैं एक भी पैसा नहीं दूँगा। जा दौड़ के जा, मेरा नाम लीजो।

कृष्ण मनोहर—पर जो जिसका है वह तो उसे देना ही चाहिए। दे दीजिए। मैं दे दूँ, वैसे मैं पान नहीं खाता हूँ, रहने दीजिए। (**पैसे जेब से निकालता है।**)

गिरधारी—रहने दीजिए, मैं पान तो आपको खिलाऊँगा ही। बिना पान खाये आप जा ही कैसे सकते हैं। हाँ, जा। पहली बार आप आये। आज उस मोती के बच्चे को देखना है।

लछमन—अच्छा, जाता हूँ बाबूजी, पर यह घेर वाली जमीन तो हमारी है न?

गिरधारी—हाँ हाँ, पर तुझे उससे क्या? जा जल्दी।

कृष्ण मनोहर—मैं भी अपनी घेर वाली जमीन के बारे में सोच रहा हूँ। न हो एक छप्पर डलवा दूँ या किसी लकड़ीवाले को दे दूँ।

गिरधारी—क्षमा कीजिए। वह जमीन, उस पर तो मेरा कब्जा है। मैंने ही तो उसे इतने दिनों खाली छोड़ रखा था।

रमा—उस पर कोई कब्जा कैसे कर सके है?

कृष्ण मनोहर—पर वह तो हमारी है, हमीं ने उसे इतने दिनों तक खाली छोड़ रखा था। आजकल मँहगाई के दिन हैं इसलिए।

गिरधारी—लेकिन वह तो मेरी है, सुनिए कृष्ण मोहन जी, मैं लड़की की शादी कर रहा हूँ तो यह मतलब नहीं कि आप मेरी जमीन दबा लें। यह हरगिज-हरगिज नहीं होगा। (**कड़ककर**) बेईमानी·····

कृष्ण मनोहर—पर उस पर तो आपका कब्जा कभी भी नहीं था?

रमा—हमारा तो सदा से उस पर कब्जा रिया है, कौन कैवे है?

कृष्ण मनोहर—तो वह जमीन आपकी है?

गिरधारी—(**ताल ठोककर**) मेरी, मेरी और मेरी। किसी ने हाथ

लगाया तो·····

कृष्ण मनोहर—क्या कह रहे हैं आप ?

गिरधारी—जो मैं कह रहा हूँ वही।

कृष्ण मनोहर—आश्चर्य है। यह जमीन आपकी कैसे हो गई ?

रमा—जैसे होती है वैसे हो गई। ब्याह करने आये हो तो क्या हमें लूट लोगे ?

कृष्ण मनोहर—(उसी गम्भीरता से) लूटने का तो इसमें कोई प्रश्न ही नहीं है। मैं जानता हूँ यह जमीन का टुकड़ा मेरा है। बहुत दिनों से खाली पड़ा है। अब·····

गिरधारी—(उसी तेजी से) यह जमीन मेरी है। मैं उसका मालिक हूँ। मैंने ही उसे खाली छोड़ रखा था। इसका मतलब यह नहीं है कोई भी ऐरा-गैरा नत्थूखैरा उस पर कब्जा कर ले। खून न पी जाऊँगा।

कृष्ण मनोहर—तो सुनो मि० गिरधारीलाल, यह साफ बेईमानी है। वैसे कोई बात नहीं, पर यह अधिकार का मामला है। मेरे पास और जमीन होती तो मैं छोड़ देता, पर मजबूर हूँ।

गिरधारी—तो सुनो मि० कृष्ण मोहन, कान खोलकर सुन लो, मैं यह धाँधली नहीं चलने दूँगा। जो कोई उस जमीन को हाथ लगाएगा उसके सिर की खैर नहीं है। कान खोलकर सुन लो।

कृष्ण मनोहर—यह शादी नहीं होगी। मैं जाता हूँ। मुझे नहीं मालूम था, लोग इतने बेईमान होते हैं, (उठता है) जो दूसरे की जमीन भी हड़पना चाहते हैं।

गिरधारी—तुम हमको बेईमान समझते हो ?

कृष्ण मनोहर—लेकिन मैं अपने को भी बेईमान नहीं मानता।

गिरधारी—लेकिन मुझे लगता है।

कृष्ण मनोहर—कि मैं बेईमान हूँ, क्यों ?

गिरधारी—हाँ।

कृष्ण मनोहर—तो फिर इसका फैसला कचहरी में होगा।

गिरधारी—जरूर, भला इसी में है कि तुम यहाँ से चले जाओ, अभी चले जाओ। मुझे गुस्सा आ रहा है। भाग यहाँ से सुअर। (दौड़ता है ऊपर।)

कृष्ण मनोहर—(डरकर) पर सुनो तो सही, इस तरह का व्यवहार।

गिरधारी—ऐसी-तैसी तुम्हारे व्यवहार की। भुखमरे साले कहीं के।

कृष्ण मनोहर—मेरा खयाल है तुम गलती पर हो। मैं जाता हूँ। गंज पर के घेर वाली जमीन तुम्हारी नहीं है। (चला जाता है।)

दोनों—(चिल्लाकर) गंज के घेर वाली।

रमा—नहीं, गंज के घेर वाली जमीन हमारी नहीं है।

गिरधारी—गंज की कैसी?

रमा—कोई होगी गंज में जमीन। तो उनसे कह दो न गंजवाली जमीन हमारी नहीं है, तुम्हारी ही है। जाओ, दौड़कर जाओ। हाय, किया-कराया सब मिट्टी में मिल गया। न जाने मैं भी कैसी हूँ। कटकर गिर भी तो नहीं पड़ती यह मरी जीभ।

गिरधारी—मुझे क्या मालूम था कि यह गंज की जमीन की बाबत बातचीत हो रही है। मैंने अपनी जमीन समझी। अब क्या हो?

रमा—हो क्या, मैं औरत जात नहीं समझती थी तो तुम तो समझते। तुमने गाली देना शुरू कर दिया।

गिरधारी—गाली तो पहले तूने ही दी थी। मैं तो चुप था।

रमा—तुम्हींने कहा था, किसी ने हाथ लगाया तो···सोच तो लेते पहले क्या बात है, कौनसी जमीन है, कहाँ है, फिर बात करते, पर नहीं, हर एक बात में लड़ पड़ोगे। अब बुलाओ न उन्हें। हाय राम, अब वे आ जाएँ तो मैं उनके पैरों पर गिर पड़ूँ।

गिरधारी—मैं इतना झूठ बोला, इतनी प्रशंसा की, इतनी खुशामद की···मैं क्या करूँ। अब वह नहीं मानेंगे।

रमा—लड़की का मरा भाग ही ऐसा है, जहाँ बात चले है वहीं कोई-न-कोई विघन पड़ जाय है। क्यों न किसी ज्योतिषी को दिखाओ।

गिरधारी—पहले तू अपनी जबान को रोक, ज्योतिषी तो पीछे देखेगा।

रमा—और तुम तो अमृत घोलते रहो हो? छूटते ही गाली। हाथापाई को उतारूँ।

गिरधारी—(सिर पकड़कर बैठ जाता है।)

रमा—लो उठो, दफ्तर को देर हो रही है। मुझे तो ग्रहदसा लगे है।

गिरधारी—क्या कोई उपाय नहीं है उनके लौटने का? यदि अब के आ जाएँ तो मैं उनके पैरों की धूल चाट लूँ।

रमा—और अब के आ जायँ तो मैं उनके पैर धोकर पी लूँ। न जाने कौनसी ग्रहदसा है, नहीं तो हम दोनों पर यह भूत न सवार होता। तभी तो कहें हैं!

गिरधारी—क्या कहें हैं?

रमा—न जाने क्या कहें हैं, मरे को मैं क्या जानूँ। कोई ग्रहदसाई होगी।

(पर्दा गिरता है।)

पर्दे के पीछे

: पात्र :

छीतरमल	सेठ
चाँदीराम	सेठ का काका
लालचन्द नेमिचन्द	दो कांग्रेसी व्यक्ति

दीनू, बड़ा मुनीम, छोटा मुनीम, डॉक्टर, किरायेदार, दरोगा तथा अन्य व्यक्ति।

[सेठ छीतरमल की दूकान। दूकान क्या है मकान है! सामने दालान है जिसमें तीन खुले दरवाज़े। पश्चिम की तरफ़ लकड़ी के तख़्तों का पर्दा लगाकर मुनीमों के बैठने का स्थान बना है, जहाँ छोटे-छोटे डेस्कों के साथ दो मुनीम बैठे काम कर रहे हैं। बीच के भाग में बैठने के लिए गद्दे बिछे हैं। बीच में दक्षिण की तरफ़ एक बड़े गद्दे पर एक ओर गद्दी गाव तकिये बिछे हैं। एक छोटा सा लोहे का सन्दूक बाईं तरफ तथा टेलीफ़ोन रखा है। उसके साथ ही मकान में भीतर जाने का दरवाज़ा, जिस पर पर्दा गिरा हुआ है। दालान की बाईं तरफ़ पश्चिम की ओर जहाँ दो मुनीम बैठे हैं कई प्रकार की संख्या बोलने की आवाज़ आ रही है—जैसे पाँचसौ तीन रु० एक आना दो पाई, छः सौ छब्बीस रु० नौ आना आठ पाई, रोकड़ में जमा। सत्ताईस सौ रुपया बम्बई की गाँठों का आदि-आदि। सब संख्याएँ तीन-चार संख्या वाली हैं। कभी-कभी एक मुनीम दूसरे को डाँटता भी सुनाई देता है, या कभी-कभी एक-दूसरे पर व्यंग्य भी करता है। दाहिं तरफ़ भी इसी तरह एक पर्दा डालकर

कुछ कुर्सियाँ; बीचमें एक मेज़ और एक सोफ़ा सेट बिछा दिया गया है। नीचे एक कार्पेट बिछा है। दाईं ओर का भाग भी दर्शकों के सामने ही है। इस समय पर्दा नहीं है। यहाँ फ़र्म के मालिक सेठ छोतरमल की दूकान है। छोतरमल की अवस्था ४२ वर्ष। दुहरा शरीर। बन्द गले का लट्ठे का कोट, काश्मीरी बेल-बूटे की टोपी, पतली धोती, पैर में काला पम्प शू पहनता है। रंग गेहुआँ, नाक मोटी, चेचक के दागों से भरी, आँखें चश्मे के भीतर मर्मभेदी। शरीर पुष्ट। मुँह में कुछ-न-कुछ चबाते रहने की आदत। बात करते समय दाँत बाहर निकल आते हैं और तमाम चेहरा मुड़े हुए अखबार की तरह सिमट जाता है। जैसे घिघियाकर बात कर रहा हो। बात करते समय बातों के आधार पर मुख के कोण बनते हैं। अंगुलियों में कई प्रकार की अँगूठियाँ, यदि कभी पैर खाली दिखाई दें तो पैर के दोनों अँगूठों में एक-एक चाँदी का छल्ला भी दिखाई देगा। इस समय दाईं ओर एक डाक्टर कुर्सी पर बैठा है। डॉक्टर गंजा, सर्ज का काला सूट पहने है। आँखों पर चश्मा, शरीर भारी, रंग साँवला। कभी-कभी स्टेथिस्कोप हिलाता है, कभी उसे जेब में रख लेता है। वह सेठ के पशु-अस्पताल का नौकर है। उसकी अवस्था है लगभग पैंतीस। इस समय डॉक्टर अकेला है। सेठ ने उसे बुलाया है। नौकर दीनू जैसे ही स्टूल पर गंगासागर लाकर रखता है वैसे ही डॉक्टर बोल उठता है।]

डॉक्टर—दीनू, सेठ जी कब आयेंगे भाई?

दीनू—(स्टूल पर गंगासागर रखने के बाद जेब से बीड़ी निकालकर सुलगाता हुआ) बैठो डॉक्टर साब, बैठो, सेठ आने ही वाले हैं। तलब है एक आने की आठ बीड़ी। कभी एक आने का बंडल मिला करे था बंडल। सब चीजों में आग लगी है। पैसे की कोई चीज नी रही जी डॉक्टर साब, (पास जाकर) मेरी मामजी खाँसी के मारे मरी जा री है। कोई दवाई दे दो न। तम तो कबूतरों का भी इलाज करो हो डॉक्टर साब!

डॉक्टर—(पैर तथा स्टेथिस्कोप हिलाता हुआ) खांसी कब से है ?

दीनू—(बीड़ी का कश खींचकर) ये ही कोई दो मीन्हे से डॉक्टर साब, जहाँ खाया वहीं उलट धरे है। रातों खांसे है, मेरी दारी सोने भी तो नी दे है और थारे कबूतरों, बन्दरों, जानवरों का के हाल है ?

(मुनीम बाईं तरफ से बाहर निकल आता है)

रामधन—डॉक्टर शाब, कोई पेट का भी इलाज करो हो ? भूख ही मारी गई। कुछ अच्छा ही नहीं लगे। दीनू, ओ रे सुन, जाके झींगे की दुकान से दो तेल की खस्ता कचौरी तो ले आ। ले दो आने। (पैसे फेंकता है।) और चटनी जरूर लाइयो। कह्यो गरमागरम दे। जा, अभी काम करना है। सारी रोकड़ मिलाने को पड़ी है। हाँ, तो फिर क्या कहो हो ? तुम भी लोगे क्या एक-दो कचौरी डॉक्टर शाब ! कचौरी बड़ी नायाब बनावे है, झींगा। हाँ, तो पेट·····(दीनू जाता है।)

डॉक्टर—आश्चर्य यह है, तुम बीमार क्यों नहीं हो गए पूरी तरह और मर नहीं गए ?

रामधन—क्या कहो हो डॉक्टर शाब ! मैं क्यो मरता भला। ये भी अच्छी रही, पेट की बीमारी का हाल कहा तो लगे मारने। तनख्वाह तो तुम्हारी यहीं से जाय है न ?

डॉक्टर—(उठकर) मुनीम जी, मेरा मतलब, सुनो तो सही।

रामधन—देख लिया तुम्हारा मतलब ! तुम्हारे जैसे सैकड़ों हैं सैर में। क्या कमी है ? हमने कहा घर के अपणे ही हैं, पूछ लो। पर यहाँ तो (दीनू आता है।) ले आया दीनू ? ला भीतर ले आ। पानी भी एक गिलास लाइयो।

(घुटने जोड़कर खाने लगता है।)

डॉक्टर—मेरा मतलब यह नहीं है। मैं तो कह रहा हूँ तेल की कचौरी रोग पैदा करती है। इससे लिवर खराब होता है। वह इण्टेस्टाइन में जाकर जम जाती है और तुम्हारे जैसे···(आगे बढ़ता है।)

रामधन—रहने दो, आगे कहाँ जूते पहने बढ़े चले आओ हो ? भिष्ट

कर दोगे क्या ? दूर रहो। हाँ, (वहीं से एक मुनीम को आवाज देता हुआ, मुँह में कचौरी भरकर) घीसालाल, सेठ मन्नालाल रामपत का भी हिसाब तैयार कर लीजो, रोजाना के खाते से। मैं बस अभी आया। आधी कचौरी रह गई है। ला दीनू, पानी दे। (किनारे पर बैठकर) ला ओक से ही प्यादे मेरे यार। (पानी पीता है। डकार लेकर) शिव शंकर, क्या बढ़िया कचौरी बनावे है मेरा यार, बस जी करे है खाते जावें। (धोती से हाथ-मुँह पोंछकर, फिर एक डकार और लेता है।) हाँ, घीसालाल, क्या कहा तैनें ? (जाकर बैठ जाता है । फिर उसी भाग से हिसाब-किताब की कई आवाजें आती रहती हैं।)

दीनू—डाक्टर साब, थारी कसम लो बोलो, पाणी पिओगे क्या ? ताजी अभी भरकर लाया हूँ। सिगरेट लाऊँ थारे लिए ? बस, ऐसी दवा दो कि ओरो खाते ही ठीक हो जाय। तुम्हारी कसम, रातों नी सोने देवी। मैं तो कहूँ मर जाय तो ही अच्छा।

डॉक्टर—ठीक हो जायगी। सुना, क्या हाल है हमारे सेठ का ?

दीनू—गफ्फे हैं गफ्फे ! (दोनों हाथ मिलाकर अँगुलियाँ गोल करके धीरे से) क्या पूछो हो, न हजार का ठीक, न लाख का। एक हम हैं सबेरे से शाम तक जी हुजूरी करते रहें। तीन लाख तो अभी-अभी हाथ आया है। वैसे है सेठ भला। नौकरों को एक एक कुर्ता एक-एक धोती दी। (मुनीम की तरफ इशारा करके धीरे से) इन्हें भी बहुत कुछ दिया। मेरी लड़की का ब्याह था, सौ दे दिये। (उपेक्षा से) ऐसे ही गुजर-बसर होवी है डाक्टर साब, सुने हैं तुम्हारे हस्पताल में भी एक कमरा और बनेगा। हमारा सेठ वैसे परोपकारी है। वैसे तुम जानो बेईमानी कौन नी करे है, पर दान करता रहे तो सारा पाप धुल जाय है। मन्दिर बनवा दो, धर्मशाला बनवा दो, बामनों को खिला दो बस ! (डॉक्टर अपने ध्यान में मग्न है, दीनू उसके सामने कहता जा रहा है, कभी-कभी दरी गद्दे की सिकुड़न भी ठीक कर देता है। कपड़ा लेकर सन्दूक भी साफ कर देता है)। इतनी बीत गई और भी बीत जायगी डॉक्टर साब, घीसालाल जी,

पाणी पिओगे क्या ? ताजा है, अभी भरा है। कचौरी-अचौरी मँगाओ तो थाने भी ल्या दूँ। (वहीं से आवाज आती है, 'दीनू जरा सा पाणी तो दवात में देजा') ल्याया जी, अभी ल्याया। (पानी लेकर देता है) क्या गूंगे हो डॉक्टर साब ! (पास जाकर धीरे से) सेठ से कहो तुम्हें भी कुछ दे दे, तनखाह बढ़ा दे। आजकल गप्फे हैं गप्फे। सेठानी तीर्थों को जारी है।

डॉक्टर—(अपने आप बेचैनी से) न जाने कब तक बैठना पड़ेगा ?

दीनू—बस अब आते ही होंगे। बाहर गये हैं, बस, इब आई मोटर। बड़े साब के पास बुलाया था। कहे हैं चोर-बाजारी की थी, उसी के मामले में। (पास जाकर धीरे से) देख नी रहे बहियाँ बदली जारी हैं। दिन-रात काम होवे है। बड़े मुनीम जी भी साथ हैं। (मोटर का हार्न) लो आगए। बड़ी उमर है सेठजी की।

(सेठ उसी रूप में बड़े मुनीम के साथ आता है और फिर चुपचाप बीच के भाग में खड़ा होकर मुनीम को समझाता है, एकदम डाक्टर के ऊपर नज़र पड़ जाती है।)

सेठ—अच्छा, डाक्टर साहब, आ गए क्या ? न हो थोड़ी देर घूम आओ, दीनू, देखे क्या है, ले जा डाक्टर साहब को बाहर, : (डाक्टर, जो सेठ के आने के समय से ही खड़ा है, दीनू के साथ बाहर निकल जाता है) अच्छा, बहियाँ तो बदल गईं, आगे क्या करना है ?

बड़ा मुनीम—कुछ नहीं, अब वे क्या कर सकते हैं ? भगवान् ने चाहा तो उनके पितरों को भी पता नहीं लगेगा सेठ जी।

सेठ—हाँ, (चारों तरफ देखकर) ठीक है। चौकस रहो। फिर कोई भी कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा। साहब से मैंने तो कह दिया—बेईमानी करने वाले की ऐसी की तैसी। तुम जानो, भला हम क्यों बेईमानी करते ?

बड़ा मुनीम—यह तो व्यापार है। दो पैसे सभी कमाना चाहें हैं। मैंने भी कहा वैसे सभी कुछ तो सरकार का है। हम क्या नहीं चाहते···जो कुछ

हो ठीक हो।

सेठ—(घूमता हुआ) हाँ हाँ, ठीक है। बात ऐसी करो तुम जानो कि आदमी गिरफ्त में न आवे। तुमने ठीक कहा। मैं सबको देख लूँगा। (सामने खड़ा होकर और जूते की ओर इशारा करके) चाँदी का चाहिए। वैसे इसे ऋषि-मुनि भी नहीं छोड़ सके···तुम जानो। फिर इनकी तो बात ही क्या है! (आँखें मटकाकर) पर इसका ख्याल रखना ही पड़ेगा, न हो दो सौ-चार सौ फेंक दो उसकी तरफ भी, कुत्ते को रोटी का टुकड़ा डाल दो तो काटना क्या भौंकना भी छोड़ दे है। चाचा जी कहा करें थे, रुपया कमाओ तो एक आना भूरसी में दो, कैसे भला, एक पैसा नौकरों में बाँटो, एक पैसा फेंककर अफसर का मुँह बन्द करो, दो पैसे दान करो, तो पन्द्रह आने पचे-पचाए धरे हैं।

मुनीम—मुझे क्या बताओ हो सेठजी, इसी घर में तो पला हूँ। वैसा तो आदमी होना मुश्किल है। इतने गरीबनिवाज, एक बार काका बीमार हो गए तो सुबह-साँझ दोनों वक्त जाते थे देखने। उन दिनों हकीम वैद्य होवें थे, सो उन्होंने उनसे कह दिया—रुपये की फिकर न करना, घर भर दूँगा वैद जी, बस, मेरे मुनीम को अच्छा कर दो।

सेठ—मुझे याद है। तुम्हारे ब्याह में ही सब-कुछ अपने हाथ से किया।

मुनीम—घीसालाल, बहियों का क्या हाल है?

घीसालाल—तैयार हैं बस, सब मामला। रामधन जी कह रहे हैं।

सेठ—उस डाक्टर को तो बुला घीसालाल, वह भी बड़ा कामचोर है। (घीसा जाता है।) काम-धन्धा करेगा नहीं, और चाहेगा कि तनख्वा बढ़ जाय। (तेजी से) बढ़ा दूँगा तेरी तनख्वा। चोर न हो कहीं का। (मुनीम से) कोई और नहीं है? वह तो बरेलू इलाज के भी काम का नहीं है। बाई को पिछले दिनों बुखार आया, वह भी तो नहीं उतार सका। पर अब देखो, इसका भी एक आदमी है इनकमटैक्स ऑफिस में।

मुनीम—मुझे तो इसमें कोई चतुराई नहीं दीखती। मेरी बाई की तो इससे खाँसी भी ठीक नहीं हुई, बुखार तो क्या जाता? पर अब तो काम निकालना है सेठजी!

सेठ—नालायक है नालायक। लो आ गया, तुम जाओ। (डॉक्टर आता है।) आइए डाक्टर साहब, आइए। कहिए मिजाज तो कुशल से हैं?

मुनीम—हमारे उस मामले का क्या हुआ डाक्टर साहब? बात यह है, वह काम तो होना ही चाहिए।

सेठ—मैं बात करूँगा मुनीमजी, तुम जाओ।

(मुनीम जाता है।)

हाँ, बैठिए न इधर बैठिए सोफे पर। अरे दीनू, देख सामने की दुकान से डाक्टर साहब के लिए चाय-वाय ला। अच्छा रहने दे, फिर सही। हाँ, तो कहिए हस्पताल का क्या हाल-चाल है?

डाक्टर—इस हस्पताल के कारण सारे देश में आपका नाम हो रहा है। मनुष्यों के लिए तो सभी हस्पताल खोलते हैं, जानवरों के लिए भी सरकार ने हस्पताल खोले हैं, परन्तु आपने पक्षियों और जानवरों दोनों के लिए हस्पताल खोला है, उससे सारी जगह नाम है।

सेठ—खैर, वह तो है ही, तो क्या कुछ समाचार-पत्रों में निकला है?

डाक्टर—जी, यह लीजिए 'आदर्श' ने लिखा है कि सेठ छीतरमल जैसा दानी, परोपकारी व्यक्ति होना दुर्लभ है। यह पशु-पक्षियों के चिकित्सालय के सम्बन्ध में एक लेख 'लोक पंच' में निकला है। इसमें मेरी भी काफ़ी प्रशंसा की गई है।

सेठ—'आदर्श' के सम्पादक को तो मैं जानता हूँ, उसे मेरी फर्म का विज्ञापन मिलता है। 'लोक पंच' का सम्पादक कौन है?

डाक्टर—वह मेरे एक मित्र हैं।

सेठ—क्या हमारे सम्बन्ध में 'नवीन भारत', 'विश्व सन्देश' जैसे पत्रों में कुछ नहीं निकल सकता? मेरा मतलब, (बात का प्रसंग बदलते हुए) हस्पताल के सम्बन्ध में बराबर कुछ-न-कुछ निकलते रहना चाहिए।

तुम्हें मालूम है मैंने तीस हज़ार रुपया खर्च करके हस्पताल का मकान बनवाया है। पन्द्रह हजार की दवाइयाँ और आठ सौ-नौ सौ का खर्च ऊपर से।·····लो काकाजी आ गए। सब मिलाकर इतना तो अब तक हो ही गया।

(सेठ के पिता का भाई शुद्ध मारवाड़ी वेश में तिलक लगाए, माला हाथ में लिये, लगभग साठ वर्ष की उम्र का प्रवेश करता है। केवल मुँह में ही राम-राम कहता हुआ और गोमुखी में माला फेरता है। चुपचाप आकर बीच की गद्दी के एक किनारे बैठ जाता है। रह-रहकर गोमुखी हिलाता है, नाम है चाँदीराम।)

चाँदीराम—हस्पताल का क्या हाल है डाक्टर साहब? राम, राम, राम, राम!

डाक्टर—जी, ठीक ही चल रहा है। इस समय दो बैल, सात घोड़े, दो गधे, पन्द्रह कबूतर, चार बटेर, दो तीतर और सौ चिड़ियाँ हैं। उनमें दस कबूतरों, एक बटेर, दोनों तीतरों और चालीस चिड़ियों का इलाज हो रहा है। एक बन्दर भी आज ही हस्पताल में दाखिल हुआ है। सवेरे ही उसका ट्रेंसिंग हुआ है। पशु ठीक हो रहे हैं।

चाँदीराम—सवेरे जब मैं मन्दिर से लौटकर गया तो वहाँ कोई भी नहीं था। **(राम राम जपना)**

सेठ—देखो डाक्टर, मैंने सुना है तुमने अपनी प्रैक्टिस भी शुरू कर दी है। यह ठीक नहीं है। डेढ़ सौ रुपया नगद तनख्वा का मिले है फिर उसी में गुज़ारा करो, तुम जानो। रुपया मुफ्त में थोड़े ही आवे है!

चाँदीराम—इसका मतलब तो यह है कि बीमारों का इलाज ठीक नहीं होता। **(राम राम जपना)**

डाक्टर—हस्पताल तो आठ बजे खुलता है। वैसे आपने कहा था कि हस्पताल के बाद प्रैक्टिस कर लिया करो। वही करता हूँ। आजकल डेढ़ सौ में गुज़र भी तो नहीं होती। इतना बड़ा परिवार है। मकान का किराया ही मारे डाल रहा है। यदि···

चाँदीराम—पर अब तो रोगियों की संख्या इतनी है कि तुम्हें फ़ुरसत ही नहीं मिलती होगी। साफ़ है, बीमारों का ठीक से इलाज नहीं होता होगा। (**राम राम जपना**)

सेठ—डेढ़ सौ मैंने इसीलिए दिये कि तुम मन लगाकर काम करोगे। वैसे एक डाक्टर सवा सौ लेने को भी तैयार था। सेवा का काम है···

चाँदीराम—सेवा का भाव रखो डाक्टर साब, स्वर्ग मिलेगा। राम राम···

डाक्टर—(**कुछ चुप रहकर**) पेट नहीं भरता सेठजी, नहीं तो हम भी सेवा ही करते हैं।

चाँदीराम—सन्तोष का फल मीठा होता है डाक्टर साब, अरे घीसा लाल! (**राम राम जपना···**)

घीसालाल—जी आया!

चाँदीराम—छीतर, इन्कम टैक्स का क्या हुआ? माने वे लोग।

सेठ—उनका भी इलाज किया जा रहा है काका!

चाँदीराम—(**गोमुखी हिलाता है, घीसा आता है।**) कितना काम हो गया रे?

घीसालाल—तैयार है मामला। सब बहियाँ ठीक हो रही हैं।

चाँदीराम—भौंरे में···हाँ समझा।

सेठ—हाँ तो डाक्टर साहब, सोच लो, प्राइवेट इलाज करना तो तुम जानो ठीक नहीं है। आज मैंने तुम्हें इसीलिए बुलाया है। मैंने सुना था काका कह रहे थे मन्दिर से लौटते हुए कि···

डाक्टर—सेठजी, फिर तनखा ही बढ़ा दीजिए। (**गिड़गिड़ाता है।**)

सेठ—(**क्रोध में**) लूट का माल है डाक्टर, या कोई भण्डारा खोल रखा है?

चांदीराम—(**गोमुखी हिलाकर एकदम**) तभी देश का बेड़ा गरक हो रिया है डाक्टर! (**राम राम राम राम जपना**)

डाक्टर—काका साहब, भूखे रहकर सेवा कैसे करें? सब कुछ इतना

मँहगा है। तीन बच्चे, बीवी, मैं, एक बूढ़ी माँ। कैसे गुज़ारा हो? आपके पास इतने मकान हैं, यदि एक मकान मिल जाय तो चालीस रुपये किराये के बच्चें।

सेठ—हुँह, आजकल मकान हैं कहाँ, और जो हैं वे किराये पर हैं। डेढ़ सौ से कम तो किसी का किराया भी नहीं है, फिर आपको कैसे दे दूँ? और मकान की तो नहीं ठहरी थी।

चांदीराम—आज मेरे सब मकान खाली करा दो तो देखो हर एक मकान ढाई सौ-तीन सौ पर चढ़ता है कि नहीं, फिर पगड़ी तीन हज़ार फी मकान अलग। चलो इतना ही करो। किसी अफ़सर से मिलकर खाली करा दो। मैं अपने मकानों में से खोजकर एक तुम्हें चालीस पर दे दूँगा। (राम राम राम) जाओ बिजली-पानी दे देना।

सेठ—तीन तो बिजली-पानी का ही पड़ जाता है। अच्छा एक काम करो डाक्टर, मुझे तुम्हारा बड़ा खयाल है। तुम्हारे दस रुपये बढ़ा दिए जायँगे, सिर्फ दो लेख महीने में किसी अच्छे अखबार में हस्पताल के सम्बन्ध में निकलवा दिया करो। बोलो, है पक्की?

चांदीराम—देखो, दस रुपये थोड़े नहीं हैं। सेवा का काम है। और उन लेखों में संस्थापक हस्पताल का नाम ज़रूर छपे। (राम राम जपना) और वह तो छपेगा ही। भला उसके बिना हस्पताल क्या?

सेठ—हस्पताल से हमें क्या लाभ है, तुम्हीं सोचो। हमने तो सिर्फ परोपकार के खयाल से यह काम शुरू किया है। मनुष्यों के लिए तो लोगों ने हस्पताल खोल ही रखे हैं। इन बेचारे पशु-पक्षियों का भी कोई पूछने वाला हो? मैं तो जब किसी पक्षी-पशु को दुखी-बीमार देखूँ हूँ दया के मारे जी भर आवे है।

चांदीराम—इनका ही दुख नहीं देखा जाता नहीं तो हमें क्या पड़ी जो मुफ्त की मुसीबत मोल लें। बोलो, है मंजूर? (राम राम राम राम) भला, तुम सुबह-शाम भजन भी करो हो। भजन किया करो भजन। सब पाप काटने वाला वही है चक्र-सुदर्शनधारी गिरधारी। मदनलाल जी, मदनलाल जी!

बड़ा मुनीम—जी काका साहब, हाजिर! (आता है।)

चाँदीराम—मुनीम जी, रामपत की फर्म से सब रुपये की वसूली हो गई?

बड़ा मुनीम—अभी तो काका साहब, आधा रुपया दिया है। आधा कहते हैं आगे के महीने में देंगे। उस बैरिस्टर ने इस मास का किराया नहीं भेजा। घीसालाल, जा तो सही, किराया क्यों नहीं देता?

घीसालाल—सवेरे गया तो था। कहता था, सेठ से बोलो पहले हमारा महनताना दे पचास रुपया, फिर किराया देंगे।

चाँदीराम और सेठ—दोनों—कैसा महनताना?

बड़ा मुनीम—वह अर्जी दावा दायर कराया था न, सोनीमल हरमजन के खिलाफ़।

सेठ—तो इससे क्यों कराया? अपना वकील कहाँ गया था?

चाँदीराम—आ गई न मुसीबत। तभी तो कहता हूँ सोच-समझकर काम करो। आजकल जमाना बड़ा खराब है। कितना काम था?

बड़ा मुनीम—अपना वकील उस दिन कहीं बाहर गया था। मैंने कहा उसी से करा लो। बैरिस्टर की कुछ चलती तो है नहीं, दया आ गई इसी से। मुन्शी ने अर्जी लिखी और बैरिस्टर ने दस्तखत करके कचहरी में पेश कर दी थी।

चाँदीराम—बस, इतनी-सी बात के पचास रुपये? हद हो गई। लूट है लूट। उससे कहो कुछ कम भी हो, बारह रुपये पर फैसला कर लो। (राम-राम जपना)

सेठ—हाँ, फिर डाक्टर साहब, बोलो क्या सलाह है? सिर्फ दो लेख। इससे एक तो तुम्हारा नाम होगा, इधर हमारा भी काम····· काम क्या, हस्पताल का प्रचार।

चाँदीराम—मान जाओ डाक्टर साब, चलो हो गया। दस बढ़ा दो। अपने ही आदमी हैं।

डाक्टर—(चुप रहकर) पर हर मास अखबार में छपवाना···तो वे भी तो माँगेंगे। आखिर उनको क्या लाभ है हस्पताल की खबरें छापने से?

चाँदीराम—क्यों, लाभ क्यों नहीं ? हमीं उस अखबार के ग्राहक बन जावेंगे, और दो को बना देंगे। एक तुम भी बन जाना। एक कम्पाउण्डर होगा। थोड़ा लाभ है ? और फिर उससे हमारा कुछ काम बढ़ा तो उसे भी कुछ दे देंगे।

डाक्टर—मैं नहीं समझा।

सेठ—इस बार हमारी सलाह है चीफ़ कमिश्नर को बुलाकर हस्पताल दिखाया जाय।

चाँदीराम—क्या बुरा है, क्या बुरा है ? सब शहर के बड़े आदमी भी उसी बखत आ जायँ।

बड़ा मुनीम—(आता हुआ) डाक्टर साहब, बुरा न मानो तो बात कहूँ। इस घर (सेठ के) में किसी बात की कमी नहीं रहती। तुम तनखा के लिए लड़ो हो। यहाँ का नौकर राजा की तरह रहे है। चाहिए लगन से काम करने की आदत। कुछ करके दिखाओ फिर सेठ जी से कहने की जरूरत नहीं होगी। समझे, काकाजी जैसा दयालु तो होना मुश्किल है। देख नहीं रहे ? बिना दो ब्राह्मणों को भोजन कराए भोजन नहीं करते। यह दूसरी बात है कि वे घर के ही स्नोइए हैं।

सेठ—मैं तो आज तुम्हारे पाँच सौ कर दूँ। पाँच सौ का काम करो। कुछ दिखाओ।

डाक्टर—मैं तो जी लगाकर काम करूँ हूँ। सिर्फ हस्पताल के बाद प्राइवेट प्रेक्टिस करता हूँ, और जो काम कहिए सो करूँ ?

सेठ—इन्हें समझाओ मुनीम जी, मैं अभी आया। (भीतर की तरफ से मकान में चला जाता है; वृद्ध आँख मींचकर भजन करने लगता है, मुनीम और डॉक्टर बैठ जाते हैं।)

बड़ा मुनीम—बात यह है 'इस हाथ दे उस हाथ ले' वाला काम है यहाँ तो। तुम्हारी जान-पहचान के बल्कि तुम्हारे ही एक रिश्तेदार इन्कम-टैक्स के अफसर हैं। उनसे कहो हमारे काम में कुछ रियायत करें तो सेठजी तुम्हें भी देंगे और उन्हें भी कुछ दे देंगे।

चांदीराम—हम कुछ मुफ्त तो काम नहीं कराते। मामला अटक रहा है। चलो यही सही।

बड़ा मुनीम—बात को समझा करो। ये बातें खुलकर नहीं की जातीं डॉक्टर साहब।

डॉक्टर—(सोचता हुआ) हाँ, है तो सही मेरे साले के चचा का मामा है। मैं आज ही जाऊँगा। देखूँगा·····

चांदीराम—हाँ, जाओ, अभी जाओ। नहीं तो गाड़ी ले जाओ। तुम कोई पराये तो नहीं, अपने ही तो हो। दीनू, ड्राइवर से कह दे गाड़ी तैयार कर लावे। तुम भी जाओ मुनीम जी, राम राम राम। काम बनाओ पहले, दस बढ़ जायँगे, पक्के रहे।

बड़ा मुनीम—चलो फिर, न जाओ आज अस्पताल, कम्पाउण्डर तो है ही। आओ चलें।

चांदीराम—हाँ, जाओ बेटा, जाओ। अस्पताल की क्या बात है? काम होना चाहिए। (बुड्ढा उठकर भीतर चला जाता है। डाक्टर मुनीम बाहर जाते हैं।)

(मुनीम आपस में बातें करते हैं।)

रामधन—हाँ, बोल न और आगे।

घीसालाल—बस, अब नहीं। थक गया मैं तो।

रामधन—मालूम है, मुनीम जी क्या कह गए हैं, सारी रोकड़ आज ही उतारनी है।

घीसालाल—मुनीम जी का तो एक आना हिस्सा है। हम क्यों मरें? पैंतीस रुपये मिले हैं, वे भी सूखे। अब मैं नहीं कर सकता। (बही पटक देता है।)

रामधन—काका जी आते होंगे। देखेंगे कि चला गया घीसालाल तो शामत आ जायगी तेरी।

घीसालाल—(कड़ककर) शामत क्यों, क्या काम नहीं करा जो शामत आ जायगी? सुनो, मुनीम जी! इतना ब्लैक से कमाया सेठ ने। हमको क्या

मिला ? एक कुर्ता, एक धोती और दस रुपये। बस।

रामधन—और क्या लूटेगा ? फोकट का माल है। दिन रात एक-एक करके अफसरों की आँख में धूल झोंककर कमावे है तो क्या लुटाने के लिए ?

घीसालाल—तो तुम्हारा पेट भरे तो तुम करो। मुझसे तो जितना होगा, करूँगा। इतनी मुसीबत है। गुजारा तो होवे नहीं है। मन्दा है, नहीं तो फाटके में से ही कुछ मिल जाता।

रामधन—फाटका मत खेला कर घीसालाल, पीशा बरबाद होवे है। मैं तो पिछले महीने चार सौ भर चुका हूँ (सोचकर) और तू कहे तो ठीक ही है ६० रुपल्ली में होवे क्या है ? पर अब कहाँ जायँ ? सत्तर तो कोई देने से रहा। हाँ, इनसे होली दिवाली पर कुछ मिल जाय है बस, यही। मालूम है कितना फायदा होगा सेठ को अगर बच गए तो······

घीसालाल—कितना भला ?

रामधन—(धीरे से) दस लाख से ऊपर तो सिर्फ कपड़े और लोहे में।

घीसालाल—(आश्चर्य से) इतना ? तभी-तभी मुनीमजी। मेरा मन करे है सब बतला दूँ जाकर पुलिस को।

रामधन—पागल हो गया है घीसालाल, ऐसा नहीं करते। जिस हाँडी में खाना उसी में छेद करना, धर्म नहीं है अपना।

घीसालाल—(क्रोध से) तो बेईमानी करना धर्म है ? सरकार को धोखा देना, लोगों को लूटना धर्म है, कहाँ है धर्म ? क्या ऐसा धर्म मानने योग्य है ? मैं ऐसा धर्म नहीं मानता। जी तो ऐसा करे है अपना गला घोट लूँ। चार महीने से घरवाली बीमार है, उसकी दवा दारू को पैसा नहीं है। माँ पिछले दिनों जीने से गिर पड़ी, उसका पाँव ठीक ही नहीं होवे। न बखत पै रोटी न कुछ, कहाँ से लाऊँ इतना पैसा ? धर्मार्थ औषधालय से दवा लाता हूँ पर फायदा तो हो। पिछले दिनों बहू की कंठी बेची। (आँखों में आँसू भर आते हैं) मर जाय तो पाप कटे।

रामधन—तो दूसरी कर लेगा, क्यों ? (हँसता है, फिर गम्भीर होकर)

तू ठीक कहे है घीसालाल, यहाँ भी यही हाल है। तीन बच्चे हैं, बीबी और आप, साठ रुपये तनखा, पर करूँ क्या? एक तरफ खाई दूसरी तरफ कुआँ। बैठे हैं, शायद कभी अच्छे दिन आयँगे किस्मत होगी तो और पेट··· भूख ही मारी गई है।

घीसालाल—किस्मत कभी नहीं होगी मुनीमजी, गधे की किस्मत में कभी नहीं लिखा कि वह आराम से खाएगा। गरीब के किस्मत नहीं होती, किस्मत होती है मालदार की।

रामधन—तो फिर तू ही मालदार बन के दिखा। ये तो ईश्वर के खेल हैं—कोई सुखी तो कोई दुखी, कभी रात, कभी दिन।

घीसालाल—मैं ये बातें नहीं मानता। ईश्वर को क्या पड़ी है कि किसी को मालदार और किसी को गरीब बनावे। यह तो हमारी समाज-व्यवस्था की कमजोरी है।

रामधन—अरे, तू तो बड़ा पंडत हो गया है घीसालाल, समाज-अमाज की बार्ता करनी सीख रह्या से रे। सुन मेरे भाई, ये माना कि देश में खूब अनाज होवे तो फिर किसी बात की कमी नहीं रहेगी। अनाज के तोड़े से ही सब चीजें महँगी हैं।

दीनू—घीशालालजी, तुम भी कचौरी-अचौरी मँगाओगा क्या? ताजी बनरी हैं, आज तो मैं भी एक खा ही आया। मजेदार है मुनीम घीशालाल।

घीसालाल—मैं क्या मुँह लेके कचौरी खाऊँगा दीनू, ये तो मुनीमजी का काम है। सूखी दो रोटी मिल जायँ आजकल तो वही बहुत हैं भाई। अच्छा मैं चला दवा लानी है। (जाता है।)

रामधन—जा हम भुगत लेंगे और क्या, बेचारा दुखी है, इसीलिए चिड़चिड़ा रहा है।

(एक-दो खद्दरधारी जनों का प्रवेश)

एक व्यक्ति—(पास जाकर) सेठजी कहाँ हैं?

रामधन—दीनू, ओ दीनू, देख सेठजी को आपके आने की खबर कर दे। आप बैठो। भीतर गये हैं।

दीनू—बैठो सा, बैठो, मैं अभी बुलाता हूँ।

(दोनों बैठ जाते हैं।)

लालचंद—कम-से-कम पाँच सौ लेना है सेठ से।

नेमिचंद—हाँ, और क्या! तभी तो पूरा होगा। आखिर सर्वोदय समाज के उत्सव का खर्च तभी तो निकलेगा। इतने नेता आ रहे हैं। सम्भव है जवाहरलाल जी आ जायँ। फिर तो···

लालचंद—उम्मीद तो है हमने जिनको बुलाया है वे सभी आ जायँगे। अच्छा भला तुमने रतनलाल को दिल्ली जाने का कितना खर्च दिया है?

नेमिचंद—दो सौ लेकर गये हैं।

लालचंद—क्यों, इतना क्यों? दो आदमी और दो सौ। दो सौ तो बहुत हैं। अगर वे इण्टर में भी जाँय तो भी जाने-आने के पचास बहुत हैं।

नेमिचंद—वे गये हैं सेकिंड में, और ठहरेंगे होटल में। फिर वहाँ ताँगे में तो चलने से रहे, टैक्सी के बिना काम नहीं चलेगा। दूर जो बहुत है।

लालचंद—हूँ, (सोचता है।) फिर नेताओं के ठहराने और खाने-पीने का प्रबन्ध मेरा रहा।

नेमिचंद—मेरा और तुम्हारा दोनों का नाम है।

लालचंद—सो हम कर लेंगे, तुम निश्चिंत रहो।

दीनू—सेठजी आ रहे हैं। (सेठ का प्रवेश)

सेठ—(देखते ही हाथ जोड़कर) धन्य भाग! (हँसता है, हाथ मिलाकर) यह सूर्य किधर से उदय हुआ? धन्य भाग, धन्य भाग! आइए बैठिए।

नेमिचंद—हाँ, सादर, लालचन्द जी सूर्य के समान हैं तो मैं पुच्छल तारा हूँ। (हँसता है।)

सेठ—मैं आप दोनों को सूर्य मानता हूँ। बात यह है कि अधिक प्रकाश में सूर्य एक है या दो जानना मेरे लिए कठिन है। मेरे लेखे तो आप दोनों ही मेरे भगवान हैं। कुछ जल वल मंगाऊँ? अरे दीनू, देख बढ़िया सी मिठाई तो ला, कुछ नमकीन भी और आज मेरे बड़े अंगूर। और दो सोडे की

चोतलें। जा! और सुनाइए क्या समाचार हैं? बहुत दिनों बाद आपके दर्शन हुए। गांधी जयन्ती के इस बार क्या प्रोग्राम हैं? क्या बताऊँ, आजकल मैं गाँधीजी की आत्म-कथा पढ़ रहा हूँ, बड़ा मजा आवे है। खूब थे गाँधी बाबा!

लालचन्द—उसी के सम्बन्ध में आपको कष्ट देने आये हैं। गांधीजी तो इस युग के अवतार हैं अवतार।

नेमिचन्द—हम लोगों के तमाम काम आपके ही सहारे हैं। इस बार गाँधी जयन्ती के सप्ताह में सर्वोदय समाज की मीटिंग, प्रार्थना, प्रवचन, चरखा-दंगल, खादी सप्ताह तथा बच्चों के भी कुछ प्रोग्राम करने की सलाह है। ये तो कह रहे हैं कि एक कवि-सम्मेलन भी किया जाय, जिसमें राष्ट्रीय भावना की कविताओं का पाठ हो। (**विधियाकर**) उसी के लिए····· पहले आप यह बताइए कि आप खादी सब घर-भर के लिए खरीद रहे हैं या नहीं? हम खादी का प्रचार भी कर रहे हैं।

सेठ—बहुत अच्छा प्रोग्राम है। खादी के लिए रही बात, सो मैं तो आप जानते हैं प्रायः सुदेशी ही पहनता हूँ। फिर आप कहेंगे तो उन दिनों के लिए खादी के कपड़े बनवा लूँगा। वैसे खादी मुझे बहुत पसन्द है, उन दिनों जब महात्माजी का दौरा हुआ था मैं तभी से खद्दर पहनने लगा था। यह तो सरकार के लोगों से मिलने के कारण बदलना पड़ा। अब तो खादी का निश्चय ही समझिए।

लालचंद—तो मतलब की बात यह है कि इस सब काम के लिए आपको कष्ट देना है।

(**दीनू मिठाई लाता है।**)

सेठ—लीजिए, पहले जल-पान कर लीजिए। पानी ला रे, हाथ धुला।

दोनों—आप भी तो लीजिए सेठजी!

सेठ—नहीं, मुझे तो क्षमा करें। अभी भीतर से जल पान करके ही चला आ रहा हूँ। हाँ, आज्ञा कीजिए। (**दोनों खाते हैं।**)

लालचंद—हाँ, तो हमने ५०० रुपये आपके नाम डाले हैं।

नेमिचंद—अरे तो ५०० रुपये से भी क्या कम होंगे, सेठजी से मैं तो हजार·····। यही तो हमारे नगर के दानी हैं।

सेठ—पाँच सौ तो बहुत हैं। ही-ही-ही·····सौ लिख लीजिए, सौ।

लालचंद—(मुँह में मिठाई भरे हुए) नहीं सेठजी, ५०० रुपये से कम नहीं।

नेमिचंद—ये अवसर बार-बार नहीं आते। हमारा विश्वास है जवाहर लाल जी भी आएँगे।

सेठ—आप मालिक हैं, दस हजार लिख देंगे तो भी देना पड़ेगा। आप ही तो सरकार हैं। सब आपका ही तो है। इधर इन्कम टैक्स वाले तंग करते हैं। बाजार वैसे मन्दा है। रोजगार तो रह ही नहीं गया। खर्चे बेहद। सच मानिए लालचन्द जी, पेट भरना मुश्किल है। बस, किसी तरह इज्जत बची रह जाय यही बहुत है, नहीं तो पहले आपने देखा होगा···

लालचंद—न पाकिस्तान बनता, न हमारे देश की यह दुर्दशा होती। इधर तो पाकिस्तान से इतने आदमियों का आना, उधर अनाज की कमी। क्या किया जाय?

नेमिचंद—अरे साहब, हमीं से पूछिए क्या हालत है। इतना त्याग किया, जेल गए, मार खाई, दुख सहे, जब कुछ बनने का अवसर आया तो और लोग आगे आ गए। वे मेम्बर बने। जिनके घर में भूंजी भाँग नहीं थी आज वे मोटरों में दौड़ते हैं; जिनके झोंपड़े नहीं थे आज वे कोठियों में रहते हैं।

लालचंद—चलो जाने दो, अपने को क्या नेमिचन्द जी? हमारा काम है सेवा करने का सो सेवा करते हैं। स्वराज्य तो हमीं ने दिलाया है।

नेमिचंद—इसमें क्या शक है, पर नहीं, मैं तो स्पष्ट-वक्ता हूँ, लगा-लेपी नहीं रखता। साफ है हमने किससे कम त्याग किया है? मैंने हजारों आदमियों में खड़े होकर व्याख्यान दिये हैं। लोग मान गए कि हाँ है कोई

बोलने वाला। पर···। और तुमसे क्या छिपा है!

सेठ—सो तो है ही। आपका त्याग किससे कम है! हम जानते हैं। पर एक बात देखिए (**ज़रा पास जाकर**) वो वीविंग मिल के शेयर जो आपने खरीदे हैं यदि मिल सके तो आधे शेयर मुझे भी खरीदवा दें। मैं ले लूँगा।

नेमिचंद—क्यों नहीं, आज ही मैं कह दूँगा। यदि आप मेरे शेयर खरीदना चाहें तो वे भी सस्ते दामों पर ···पर···।

सेठ—नहीं नहीं,···मैं चाहता हूँ हम लोग अपने ग्रुप के आदमी लें ताकि मिल के ऊपर हमारा अधिकार हो। सुना है लालचन्द जी कोठी बनवा रहे हैं?

लालचंद—हाँ, अभी तो शुरू ही की है।

नेमिचंद—कोठी तो मैं भी एक बनवाना चाहता हूँ।

सेठ—क्या हर्ज है, आपने क्या कम कष्ट उठाये हैं?

लालचंद—हाँ, फिर क्या निर्णय किया आपने? देखिए हम पाँच सौ से (**घिघियाकर**) कम न लेंगे।

सेठ—जैसी आपकी मर्जी। मैं क्या आप से बाहर हूँ। पर एक बात है···

नेमिचंद—कहिए! हाँ, लिखो पाँच सौ सेठ छीतरमल जी के नाम। चैक दीजिएगा या···

सेठ—जैसा कहें। रुपया भी हाजिर है।

लालचंद—रुपया ठीक रहेगा, क्यों नेमिचन्द जी?

नेमिचंद—हाँ, और क्या? कौन झंझट मोल ले और भुनाने जाय?

सेठ—मुनीमजी, रामधन जी, ५०० रु० भीतर से ला दो। काकाजी से गुच्छा ले लेना और आपने हाथ तो धोए ही नहीं। दीनू, हाथ धुला और पान ला। सिगरेट पियेंगे?

रामधन—जी, बहुत अच्छा! (**जाता है।**)

लालचंद—हाथ धुले ही हैं। लाओ, फिर धो ही लें।

दीनू— (हाथ धुलाने के बाद) कौनसी सिगरेट लाऊँ ?

लालचंद—देख, पाँच सौ पचपन नम्बर की सिगरेट मिले तो एक पैकिट ले आना।

नेमिचंद—मेरे लिए तो तू एक सिगार ले आ। वर्मी सिगार कहना। बारह आने की एक आवेगी। क्या बताऊँ, सिगार की आदत पड़ गई है। बड़े-बड़े आदमियों में मिलना-बैठना होता है। क्या करूँ। पीता हूँ, पीता क्या हूँ पीना पड़ता है।

सेठ—हाँ, क्या हरज है, यह तो है ही। ला जल्दी। (दीनू जाता है।)

लालचंद—और सुनाओ सेठजी !

सेठ—क्या सुनाएं पंडितजी, आपके राज में पिटे जा रहे हैं। न कोई सुनता है न देखता है। किसी ने शिकायत कर दी कि हमने ब्लैक मार्केट किया है, सो परसों इनकम-टैक्स कमिश्नर ने बुलवाया था। आज भी बुलाया। मैंने तो कह दिया साहब, आप माई-बाप हैं। हमारी जिन्दगी कांग्रेस की सेवा करते बीती है। फिर भला हम क्यों ब्लैक मार्केट करने लगे। बहियाँ माँगी हैं, परसों रात को पुलिस के आदमी आ गए। खैर, वह तो मैंने टाल दिए जैसे-तैसे। नाक में दम है साहब ! इसीलिए प्रार्थना है.....

नेमिचंद—क्या बताएं इन कलक्टरों, कमिश्नरों के मारे नाक में दम है। भला आप जैसे दानी को तंग करना क्या ठीक है? अच्छा, आप घबरावें नहीं, मैं उनसे मिलूँगा। विश्वास है मान जायेंगे, नहीं तो ऊपर जाना पड़ेगा।

लालचंद—एक तरह से देखा जाय तो हममें और उनमें संघर्ष चल पड़ा है। जो हम कहते हैं उन्होंने उसे न मानने की कसम खा ली है। हम कहते हैं अरे भाई, हम लोग घास तो नहीं खाते, आखिर गांधीजी के मार्ग पर देश को चलाना चाहते हैं। अब वैसी ब्यूरोक्रेसी नहीं चलेगी। समझे ? पर यही मुश्किल है। हमने तो कोई पूछता ही नहीं।

नेमिचंद—तो इसमें किसी का अहसान नहीं है। जिन्होंने स्वराज्य

दिलाया, स्वतन्त्रता कायम की, वे लोग साधारण नहीं हैं। आज भी कांग्रेस का राज है, उसी की हुकूमत है।

सेठ—सो तो है ही, सो तो है ही, तुम जानो, मानना पड़ेगा। हम लोग भी आपके ही सहारे हैं श्रीमान् जी! हाँ, तो मैं चाहता हूँ मैं जो स्टेटमेंट भेजूँ वह स्वीकार हो जाय। वैसे मैं अपनी तरफ से कोशिश कर रहा हूँ फिर भी·····वैसे मैं आपसे मिलना भी चाहता था इसी सम्बन्ध में।

लालचंद—आपका काम हमारा काम है सेठजी, आप निश्चित रहें, आपको आँच नहीं आ सकती।

सेठ—कृपा है आपकी। आप ही के सहारे हैं हम लोग। जी रहे हैं और क्या? मैं जाऊँ देखूँ, रुपया क्यों नहीं लाया मुनीम? जरा क्षमा···।

(चला जाता है।)

नेमिचंद—हाँ हाँ जाइये, सेठ ने कमाया जरूर है ब्लैक में?

लालचंद—कम-से-कम सात-आठ लाख। पर अपने को क्या? आड़े वक्त काम देता है, सहायता मिलती है। पिछले दिनों लोहा इसी से लिया, अब कोठी के लिए जरूरत पड़ेगी तो·····

नेमिचंद—गाँधीजी देश के धनियों की रक्षा आवश्यक मानते थे।

लालचंद—खैर, गांधीजी की धनियों की रक्षा का मतलब दूसरा था। जो भी हो। कांग्रेस का संगठन दृढ़ करने के लिए साधारण लोग तो रुपया देने से रहे। रुपया हमको इन्हीं से लेना पड़ेगा, इसलिए इनकी रक्षा भी करनी आवश्यक है। मेरी सलाह है, मैं भी एक मोटर खरीद लूँ। अब उसके बिना काम नहीं चलता। आपने तो खरीद ली है।

नेमिचंद—जरूर, यही क्या कम है कि सेठ में इतनी देश-भक्ति है और आवश्यकता पड़ने पर भरपूर सहायता करता है। हमेशा आड़े समय में सहायता के लिए तैयार रहता है।

(सेठ का आना)

सेठ—लीजिये, देर हो गई क्षमा करें। (दोनों व्यक्ति नोट जेब में

डालकर नमस्ते करते हुए चल देते हैं। सेठ उनको जाता हुआ देखता रहता है। चले जाने के बाद) ये हैं कांग्रेस के लोग। मेरे समान ही स्वार्थी और अर्थ-लोलुप। इनके भी वैसे ही ठाट हैं, मकान, कोठी, मोटर, नौकर-चाकर, फिर मजा यह कि काम कुछ भी नहीं करते। व्यापार कोई नहीं करते। तो क्या रुपया आकाश से फूट पड़ता है? अभी-अभी नेमिचन्द ने दस हजार के शेयर खरीदे हैं। और भी हिम्मत है। मैं ब्लेक मार्केट करता हूँ, ये सहायता देते हैं। ये स्वयं भी उतने ही डूबे हुए हैं जितना मैं। फिर मैं क्यों मानूँ कि मैं पाप करता हूँ। पाप, पाप कौन नहीं करता? कौन नहीं करता? मैं पाप करता हूँ तो धर्म भी करता हूँ, दान भी देता हूँ, मन्दिर में पूजा भी कराता हूँ, ब्राह्मणों को भोजन भी कराता हूँ, गरीबों को अन्न भी बँटवा देता हूँ। मैं पशु-पक्षियों की सेवा करता हूँ। उनके लिए मैंने अस्पताल खोल रखा है। उनकी बीमारी दूर होती है, क्या यह सब पाप धो डालने के उपाय नहीं हैं। (टहलता रहता है) इन्कम टैक्स वालों को ठीक करना होगा। वे अब पुराने हिसाब की चिन्दी भी नहीं पा सकते। ये नेमिचन्द और लालचन्द को दिया गया रुपया ही मुझे बचाएगा। मैं आज ही खद्दर खरीदकर कपड़े बनवा लूँगा। मैंने गलती की जो अब तक खद्दर के कपड़े नहीं पहने। पहनने होंगे। यही युग का, समय का, तकाजा है—जैसी बहे बयार पीठ तब तैसी दीजे। दीनू! दीनू!!

दीनू—हाजिर सेठजी!

सेठ—बड़े मुनीम जी और डाक्टर कहाँ गये दीनू?

दीनू—बड़े मुनीम जी के साथ डाक्टर को काका साहब ने बाहर भेजा है सेठ जी।

सेठ—काका साहब ने···हाँ, ठीक है, जा! (अपने आप) काका-साहब ने भेजा है···ठीक है। यदि निशाना लक्ष्य पर बैठ गया···सारा मामला इन क्लर्कों के हाथों में ही तो होता है। अफसर तो सरकार की प्रेस्टिज-प्रकाश का बल्ब है जो अपनी पावर के अनुसार चमकता है। कोई पाँच का, कोई दस का और कोई पच्चीस का। यदि उस बल्ब के

ऊपर इकन्नी रखकर तार से जोड़ दिया जाय तो दूर तक अंधेरा फैल जाता है। बिजली फ्यूज हो जाती है। इसी तरह रुपये का जोड़ दूर तक प्रेस्टिज के प्रकाश को धुँधला कर देता है। चाहिए रुपये को वहाँ जोड़ने की योग्यता। (टहलता हुआ) लोग कहते हैं हम लोग ब्लेक मार्कीट करते हैं, हम सरकार के शत्रु हैं, देश के दुश्मन हैं। गरीबों का खून चूसकर मोटे हुए हैं। कितनी गलत बात है। क्या हमने गरीबी पैदा की है? जिसमें योग्यता हो वह आगे आवे। हम में नहीं गरीब हो जाते, उनके दिवाले निकल जाते? फिर वे अपनी योग्यता चतुराई से बड़े बन जाते हैं। झूठ है, सब झूठ है। रुपये को पकड़ने से रुपया मिलता है। उसके लिए कितने हाथ-पैर मारने पड़ते हैं, यह कौन जानता है। कितने दिनों से मैं परेशान हूँ? न रात को नींद आती है न दिन को चैन! कितनी परेशानी है। रुपया कमाना ही कठिन नहीं है उसको लुटेरों, डाकुओं, चोरों और सरकारी पुर्जों से बचाकर रखना भी एक कठिन काम है। (टहलते हुए खड़ा होकर देखता है) कौन, कौन ये लोग! एक लड़की, एक लड़का और यह आदमी भी उनके साथ है? कौन है, आप क्या चाहते हैं? अरे, पुलिस के दरोगा भी हैं। आइये, दरोगा जी साहब, बैठिए।

व्यक्ति—सेठ जी, दया कीजिए। कुछ दिन और ठहर जाइए। हम आपका सब किराया चुका देंगे, मकान खाली कर देंगे।

सेठ—क्या तुम मेरे किरायेदार हो?

व्यक्ति—जी, ये दरोगा हमारा असबाब मकान से बाहर निकालकर फेंक रहे हैं।

सेठ—तो ठीक ही कर रहे हैं। इधर एक साल से तुमने किराया भी तो नहीं दिया है।

व्यक्ति—वह तो आपने ही किराया नहीं लिया तो हम क्या करते? खैर, मेरी प्रार्थना है कि आप कुछ दिन और ठहर जायँ तो मैं किराया दे दूँगा।

सेठ—(क्रोध से) मैं किराया नहीं लूँगा। आप पिचहत्तर देते हैं, मैं

सौ लूँगा। यही मेरी आपकी लड़ाई है। इसीलिए यह सब झगड़ा हुआ है।

व्यक्ति—देखिए, सौ देने की मेरी शक्ति नहीं है।

सेठ—तो आप मकान छोड़ दीजिए। मेरा मकान अब डेढ़ सौ पर उठेगा।

व्यक्ति—यह तो ज्यादती है सेठ जी!

सेठ—कचहरी ने फैसला कर दिया है, अब आपको जो-कुछ करना था कर चुके। जाइए, मेरा मकान खाली कर दीजिए। मैंने ही पुलिस से कहा है। मैं और नहीं ठहर सकता।

व्यक्ति—मैं मानता हूँ सरकारी न्याय आपके पक्ष में है। किन्तु देखिए, मकान तो मिल नहीं रहा, हम लोग कहाँ जायँ?

सेठ—तो मैंने क्या ठेका ले रखा है संसार का। क्यों दरोगा जी!

दरोगा—मैं अभी आया सेठ जी, आप फैसला कर लीजिए। (जाता है।)

व्यक्ति—मैं मनुष्यता के नाते आपसे प्रार्थना करता हूँ मुझे कुछ दिन की मोहलत दीजिए। मैं आपका मकान खाली कर दूँगा।

सेठ—(दरोगा से) जी बहुत अच्छा। आप हो आइए! (व्यक्ति से) आपको तो सरकार ने पिछले चार मास से मकान खाली करने की सूचना दे रखी है।

व्यक्ति—मैं मानता हूँ। मैंने भी मकान ढूँढ़ने में कोई कसर उठा नहीं रखी।

सेठ—फिर आगे मकान मिल ही जायगा, इसका क्या प्रमाण है?

व्यक्ति—लेकिन इस तरह तो मैं कहीं का न रहूँगा। मेरे बच्चे हैं, बीवी है, मैं भी आखिर प्रतिष्ठित व्यक्ति हूँ। इसीलिए आपसे कुछ दिन और ठहर जाने की प्रार्थना है।

सेठ—सुनिए श्रीमान, मैं ऐसे अवसर को हाथ से नहीं जाने दे सकता। अब तो मेरा मकान खाली करना ही पड़ेगा। या फिर···या फिर···

व्यक्ति—या फिर क्या···कहिए। जो-कुछ हो सकेगा, मेरी शक्ति होगी। मैं बहुत दुखी हूँ सेठ जी, आप दानी हैं, नगर में आपका नाम है। आप तो पशु-पक्षियों पर भी दया करते हैं, फिर मैं तो मनुष्य हूँ।

सेठ—मैं जानता हूँ दया कहाँ करनी चाहिए। नहीं, कुछ नहीं, जाइए, आप मकान खाली कर दीजिए। मैं कुछ भी नहीं सुनना चाहता। **(बच्चे रोने लगते हैं, व्यक्ति दुःखाभिभूत होकर चुपचाप खड़ा रहता है।)**

व्यक्ति—मैं एक सप्ताह का अवकाश चाहता हूँ। उस समय तक खाली कर दूँगा।

सेठ—दीनू, हटाओ इन्हें। मुझे फ़ुरसत नहीं है। **(बच्चे और ज़ोर से रोने लगते हैं, व्यक्ति के चेहरे पर निराशा की रेखाएँ उभरती हैं।)** जाइए साहब, थानेदार साहब आ रहे हैं। अच्छा है उनके पहुँचने के पहले आप मेरा मकान छोड़ दें।

व्यक्ति—माना मैं किरायेदार हूँ पर हूँ तो मनुष्य, मेरे भी बच्चे हैं, पत्नी है। ऐसी अवस्था में आप ही सोचिए मैं इतनी जल्दी कहाँ जा सकता हूँ? **(हाथ जोड़कर)** कृपा करें।

सेठ—**(उसी धुन में)** आप भी अजीब आदमी हैं। मैं कह रहा हूँ मेरा सिर न खाओ। जाओ। मैं मकान में आपको नहीं रहने दे सकता, नहीं रहने दे सकता। जाओ।

व्यक्ति—तो आप किसी प्रकार मुझ पर कुछ दिनों के लिए भी दया नहीं दिखा सकते? **(गिड़गिड़ाता है; बच्चे रोने लगते हैं। सेठ एक बार बच्चों को देखता है। फिर कुछ सोचता है।)**

सेठ—नहीं, नहीं दिखा सकता दया, यह नहीं हो सकता। छः महीने का किराया दे सकते हैं अभी आप?

व्यक्ति—मेरे पास छः मास का किराया नहीं है।

सेठ—आपकी पत्नी का गहना तो है। वही ले आइए।

व्यक्ति—सेठ जी, उसमें बहुत-सा तो पिछले दिनों पत्नी-बच्चों की बीमारी में खर्च हो चुका है। इधर मैं बहुत दिनों से बेकार भी हूँ। नौकरी

की तलाश में हूँ···

सेठ—बेकार मैं ऐसे बेकारों को मकान में नहीं रहने दे सकता। मैं जानता हूँ तुम लोग मक्कार हो।

व्यक्ति—(भुनभुनाकर, विवशता से) मैं भी प्रतिष्ठित आदमी हूँ। दया कीजिए। मेरी-आपकी किराया बढ़ाने पर ही तो लड़ाई हुई है। फिर मैं जितना किराया ठहरा था उतना तो देता ही रहता हूँ। आपने ही उतना किराया नहीं लिया।

सेठ—(कोई उत्तर न पाकर) बहुत बकवास मत करो। जाओ। यदि पुलिस द्वारा मकान से बाहर सामान फेंक दिये जाने का डर हो तो अभी जाकर खाली कर दो।

व्यक्ति—ऐसे मैं कहाँ जाऊँ सेठ जी?

सेठ—जहाँ सींग समायें, जहाँ जगह मिले, मैं क्या जानूँ? मेरा सिर न खाओ।

(काका सेठ आता है।)

चांदीराम—छीतर, हरगिज इस बेईमान का कहना न मानियो। अब मकान सवा सौ में उठेगा। (राम राम राम राम) तुम्हें कोई हया-शरम नहीं है? तुम्हारे साथ दया करना फिजूल है।

व्यक्ति—सेठ जी, मैं आपके हाथ जोड़ता हूँ। थोड़े दिनों की मुहलत दे दें।

दोनों—नहीं, नहीं हो सकता। (काका सेठ, कड़ककर) जाओ मकान खाली करो। (राम राम राम राम)

सेठ—तुम चाहे लाख कहो, मकान मैं नहीं दे सकता। मैं अभी थानेदार, को टेलीफ़ोन करके दरोगा को बुलाता हूँ कि पुलिस की सहायता से मकान खाली कराओ।

(व्यक्ति विवशता और भविष्य के अन्धकार से नीचे देखने लगता है। बच्चे बाप की अवस्था देख और भी ज़ोर से रोने लगते हैं। सेठ चिल्लाता है।)

क्या शोर मचा रक्खा है ? जाता भी तो नहीं। (टेलीफोन उठाता है। इसी समय डाक्टर, बड़ा मुनीम तथा इन्कमटैक्स का एक अफ़सर प्रवेश करते हैं। सेठ देखता है, वह अफ़सर रामचन्द से बड़े तपाक से मिल रहा है। बच्चों के सिर पर हाथ फेर रहा है और रामचन्द उससे टूटे-फूटे स्वर में कहने को उद्यत होता है कि)

बड़ा मुनीम—क्या ये आपके कोई·····

अफ़सर—ये मेरे मित्र रिश्तेदार···राम···

बड़ा मुनीम—कोई बात नहीं, आप अभी मकान में ठहरिये रामचन्द जी, कोई बात नहीं। मैं सेठजी से···

सेठ—(टेलीफ़ोन जैसे का तैसा छोड़कर) आइए-आइए, जैसा आप कहेंगे वैसा ही होगा। रामचन्द जी, कोई बात नहीं। आप खुशी से मकान में रहिए। मैं अभी टेलीफ़ोन पर थानेदार से कहे देता हूँ कि मकान खाली कराने की जरूरत नहीं है। आइए, आप लोग यहाँ आइए। (अपने-आप कुरसी ठीक करने लगता है। टेलीफ़ोन उठाकर) मैं छीतर-मल बोल रहा हूँ जी, अभी मकान खाली न होगा। कष्ट न करें। (रिसीवर रख देता है।)

चांदीराम—अरे दीनू, जाकर बाज़ार से बढ़िया-सी मिठाई तो ला।

सेठ—देख दीनू, बंगाली मिठाई लाना। जा जल्दी (बच्चे सिसकते हुए चुप हो जाते हैं। रामचन्द स्तब्ध। बाकी लोग जैसे-के-तैसे, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। जाकर कुर्सियों पर जम जाते हैं। काका सेठ ज़ोर-ज़ोर से गोमुखी के भीतर माला फेरने लगता है। सेठ उन बच्चों के सिर पर हाथ फेरता है।) कोई बात नहीं, कोई बात नहीं। अपना ही घर है। कोई बात नहीं। जा, जल्दी जा दीनू! माफ करना, गलती हो गई। जा, दीनू गया कि नहीं ? रे ए ए···।

(पर्दा गिरता है।)

PK
2098
B55P37

Bhatt, Udai Shankar
Parde ke pīche

PLEASE DO NOT REMOVE
CARDS OR SLIPS FROM THIS POCKET

UNIVERSITY OF TORONTO LIBRARY